ब्रह्म सत्यं जगत् सत्यं अंशो जीवो हि नापरः

अखण्ड भूमण्डलाचार्य जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठ, श्रीनाथद्वारा

पुष्टिमार्ग

त्रैमासिक पत्रिका

जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठाधीश्वर
आचार्यवर्य्य गोस्वामी तिलकायित
श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी)
महाराजश्री की आज्ञा से–

प्रकाशक

अजय कुमार शुक्ला

मुख्य निष्पादन अधिकारी

मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा (राज.)

31 दिसम्बर 09
(वि.सं. २०६६)

दयाशंकर पालीवाल
सम्पादक

जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठाधीश्वर आचार्यवर्य्य गोस्वामी तिलकायित श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी) महाराजश्री की आज्ञा से सम्पादक दयाशंकर पालीवाल द्वारा सम्पादित एवं स्वत्वाधिकारी श्रीमन्दिर मण्डल, नाथद्वारा के मुख्य निष्पादन अधिकारी द्वारा प्रकाशित तथा **श्रीसुदर्शन यन्त्रालय** मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा द्वारा मुद्रित।

संरक्षक–मण्डल

अध्यक्ष

गो. ति. श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी) महाराजश्री

चि. गो. श्रीभूपेशकुमारजी (श्रीविशाल बावा)

प्रकाशकः–

अजय कुमार शुक्ला

मुख्य निष्पादन अधिकारी मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा

दयाशंकर पालीवाल

सम्पादक

जयदेव गुर्जर गौड़
परामर्शदाता

डा. देवर्षि कलानाथ शास्त्री
परामर्शदाता

न्यौछावर १५/– *अंक– 4* *प्रति १०००*

नाथद्वारा मन्दिर मण्डल के मुख्य निष्पादन अधिकारी नाथद्वारा द्वारा प्रकाशित एवं श्रीसुदर्शन यन्त्रालय मन्दिर मण्डल द्वारा मुद्रित
R.N.I.No. RAJHIN-/1999-3432

प्राप्ति स्थान
श्रीगोवर्धन पुस्तकालय, धोली पटिया श्रीनाथजी मन्दिर
नाथद्वारा (राजस्थान) 313301

कृपया सदस्यता शुल्क वार्षिक–60), पांच वर्षिय–300) और आजीवन–800) भिजाकर शीघ्र सदस्य बनें और अन्य लोगों को भी बनाने का पवित्र कार्य करें।–सम्पादक
''जय श्रीकृष्ण''

सम्पादकीय :–

वैज्ञानिक दृष्टि से स्वर्ण (गोल्ड) का कितना ही सूक्ष्मत्तम विभाजन परमाणु स्वरूप तक किया जाय तो भी उसमें सर्वत्र, अत्यंत सूक्ष्म कण परमाणु स्वर्ण के ही रहेंगे और स्वर्ण से बने विभिन्न गहने के रूप (वस्तु) में भी यही स्वरूप (वस्तु तत्व) स्वर्ण ही सर्वत्र विद्यमान रहेगा। मृतिका (मिट्टी) और उससे बने बर्तनों में वही मूल तत्व मिट्टी है। लोह तत्व और उससे बने विविध उपकरण, चांदी तत्व और उससे बने विविध रूप गहने आदि में भी सूक्ष्मत्तम विभाजन पर उनमें उनके ही मूल कण (परमाणु) ही विद्यमान रहते हैं। जैसे स्वर्ण सत्य है और गहने भी उसका ही अविकृत परिणाम है वैसे ही ब्रह्म सत्य है और जगत् भी ब्रह्म का अविकृत परिणाम है। श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने प्रतिपादित किया है कि जगत् असत्य किंवा क्षणिक नहीं अपितु उतना ही सत्य है जितना ब्रह्म। यह जगत् भगवान् का कार्य है। भगवान् माया द्वारा जगत् रूप बनते है। ब्रह्म जगत् का समवायी एवं निमित्त कारण है। कोई भी पदार्थ किसी भी रूप में ब्रह्म ही है। घट पटादि सभी ब्रह्म है। ब्रह्म अनन्त एवं व्यापक है और अपनी माया से किसी भी प्रकार का रूप धारण करने में सम्पूर्ण समर्थ है। माया भ्रम नहीं है अपितु यह भगवान् की सर्व–भवन–सामर्थ्य रूपा शक्ति है। जगत् ब्रह्म–कृत है किन्तु, संसार, जीव–कृत। जीव–गत अविद्या से संसार अस्तित्व में आता है। विद्या एवं अविद्या माया से उत्पन्न भगवान् की शक्तियां है जिनका संबंध केवल जीव से ही है। संसार का लय माना गया है जगत् का लय नहीं होता, उसका केवल भगवान में तिरोभाव होता है। जगत् की तिरोभाव अवस्था में भगवान् आन्तर लीला करते है जबकि आविर्भाव अवस्था में ब्रह्म लीला।

प्रस्तुत अंक में प्रकाण्ड विद्वान, गूढतत्व चिन्तक और पुष्टिमार्ग शुद्धाद्वैत दर्शन के मर्मज्ञ रहे देवर्षि श्री रमानाथ शास्त्री के आलेख 'अध्यात्म' में ब्रह्माण्ड के मूलरूप ब्रह्म के विराट् दर्शन होते हैं। महान् विद्वान डा. राकेश तैलंग ने अपने आलेख में प्रभुचरण श्री गुसांईजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरधरजी को व्यापक धर्म के रूप में विकसित करने वाले और पुष्टिमार्ग के शिल्पकार बताया है। परम भगवदीय श्रीहरिनारायण नीमा ने अपने

आलेख में श्रीजी के चरणारविन्द और मुखारविन्द में भजनान्द रसपान की प्रेरणा दी है। भागवत में विद्या–वाचस्पति डा. योगेश्वर दयाल शर्मा ने शोध पूर्ण ढ़ंग से श्रीकृष्ण के समय का उल्लेख किया है। परम भगवदीय श्रीगोपालदास व. नीमा का आलेख भावुक भक्तों का चित्त द्रवित कर ही देता है। विदुषी डा. रचना तैलंग ने महाप्रभुजी की प्रस्तुत छवि में कई स्वरूप का दर्शन कराया है। सरल और त्यागी वैष्णव श्रीश्यामसुन्दर गिरनारा ने अपने आलेख में सदैव केवल भगवत चिन्तन को ही जीव का उद्धारक माना है। प्रो. श्रीललितशंकर शर्मा का आलेख प्रिय भक्तों को प्रभु संग अपनत्व जगाकर पुष्टि का अनुभव कराता है। विद्वान पं. श्रीविष्णुदत्त पुरोहित ने विविध प्रसंगों से सूरदासजी के विभिन्न रूपों का परिचय कराया है। पुष्टिमार्गीय प्रधान–पीठ में ग्रहण आचार–विचार पर प्रधान उपाध्याय श्रीब्रजभूषण भट्ट ने विस्तार से प्रकाश डाला है। वैष्णव जन लाभार्थ नवोदित पत्रकार श्रीनवीन सनाढ्य ने ''नाथद्वारा के अनूठे अन्नकूट महोत्सव'' और ''छप्पनभोग मनोरथ'' के आनन्द का भावपूर्ण वर्णन किया है। प्रसिद्ध चित्रकार डा. गगन दाधीच ने ''लालन के उत्सव पर उत्सवों की बहार'' और ''गोपमास में तेरह उत्सवों के संयोग में लीलाभाव'' का रोचक एवं सरस चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि श्रीराधेश्याम वर्मा की कविता भक्ति रस का पान कराती है। अमरीकन लेखक श्रीश्यामदास ने अपने अंग्रेजी–आलेख के अगले क्रम में सरस प्रस्तुती की है। प्रभु श्रीनाथजी का अनुग्रह, पूज्यपाद ति. गो. श्रीराकेशजी महाराजश्री की कृपा, चि. गो. श्रीविशाल बावा सा. का सम्यक् मार्ग दर्शन, मुख्य निष्पादन अधिकारी महोदय की सदाशयता, परामर्शदाताओं का परामर्श और विद्वान लेखकों का लेखन मेरा सम्बल रहा है। पत्रिका का स्तर उत्तरोत्तर उत्तम बनता रहे और विद्वज्जन तथा पाठकों का सतत् सहयोग मिलता रहे, यही परब्रह्म पुष्टि पुरूषोत्तम प्रभु श्रीनाथजी से प्रार्थना है।

दयाशंकर पालीवाल (पूर्व प्रचार्य, शुद्धाद्वैत भूषण)
संपादक

अनुक्रमणिका

विषय		प्रस्तोता	पृष्ठ सं.
*	सम्पादकीय	दयाशंकर पालीवाल	
1.	अध्यात्म	देवर्षि श्री रमानाथ शास्त्री	6
2.	पुष्टिमार्ग के शिल्पकार–श्रीगिरधरजी	डॉ. राकेश तैलंग	9
3.	कमल मुख देखत कौन अधाय	श्री हरिनारायण नीमा	11
4.	श्रीकृष्ण के समय का निर्धारण	डा. योगेश्वर दयाल शर्मा	13
5.	भगवत प्रेम में प्रेमाश्रुओं की महत्ता	श्री गोपालदास व. नीमा	18
6.	भक्त की भावना का महत्व	डा. रचना तैलंग	21
7.	हरिमूर्तिःसदा ध्येया.....	श्री श्यामसुंदर गिरनारा	22
8.	अपनत्व के भाव से प्रभु प्राप्ति	प्रो. श्रीललित शंकर शर्मा	26
9.	भक्त कवि सूरदास	पं. श्री विष्णुदत्त पुरोहित	27
10.	पुष्टिमार्गीय प्रधान–पीठ (धर) में ग्रहण आचार–विचार	श्री ब्रजभूषण भट्ट, प्रधान उपाध्याय	30
11.	नाथद्वारा का अन्नकूट महोत्सव सबसे अनूठा	श्री नवीन सनाढ्य	31
12.	गुर्जराणां वर्षारम्भ के साथ उत्सवों की बहार वल्लभ पीठाधीश्वरकृत लालन के उत्सव पर	डा. गगन बिहारी दाधीच	33
13.	श्रीनाथजी में छप्पनभोग	श्री नवीन सनाढ्य	34
14.	गोपमास में तेरह उत्सवों का संयोग साज–श्रृंगारिक लीलाओं का भाव	डा. गगन बिहारी दाधीच	35
15.	परम भगति रस	श्री राधेश्याम वर्मा 'श्याम'	36
16	THE LIFE OF SHRI MAHAPRABHU VALLABHACHARYA (c. 1479-1531)	-SHYAM DAS	37
17.	सदस्यता फार्म (हिन्दी)	मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा	39
18.	सदस्यता फार्म (अंग्रेजी)	मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा	40

पुष्टिमार्गीय विद्वज्जन से प्रामाणिक आलेख सादर आमन्त्रित है– सम्पादक

अध्यात्म

—देवर्षि श्री रमानाथ शास्त्री

आत्मनि अधि–इति अध्यात्मम्। आत्मा में जो कुछ समा रहा है वह सब अध्यात्म है। यहां अभेद में सप्तमी है। जैसे सुवर्ण में गहने। मिट्टी में बासन। आत्मा में सब कुछ। इसका तात्पर्य यह होता है कि आत्मा ही सब कुछ। यह बात हम 'सुवर्ण गहने' और मिट्टी–बासन' आदि दृष्टान्तों में समझ चुके हैं। दुनिया में आत्मा शब्द से 'मै' को सब कोई समझ रहे है। 'मै' यह सबका आत्मा है। साढे तीन हाथ के इस देह में जितने भी पदार्थ समा रहे हैं वे सब अध्यात्म कहे जा सकते हैं। एक में अनेक पदार्थ समा रहे हैं। 'मैं' मे देह इन्द्रिय प्राणादि अनेक पदार्थ समा रहे हैं। एक में अनेक पदार्थ तब ही समा सकते हैं जब वे मूल में एक हों अथवा एक मूल के ही वे अनेक रूपान्तर हों। एक आत्मा में देहेन्द्रिया हि समा रहे हैं इसका तात्पर्य यह होता है कि मूल में वे सब आत्मा ही है। एक ही हैं। सत् एव सौम्य इदं अग्रे आसीत् है। सौम्य! यह सब कुछ, सृष्टि के पूर्व एक सत् (आत्मा) ही था। इस श्रुति का भी यही तात्पर्य है।

मै, इस अध्यात्म की सृष्टि का पूर्व रूपवीर्य है। स्त्री रूप अग्नि में वीर्य की आहुति पांचवीं आहुति है। इस पांचवीं आहुति के होने पर वीर्य ही मनुष्य हो जाता है। इतितु प×चम्यामाहुतावायः पुरुष वचसो भवन्ति'। इस श्रुति में कहा है कि इस तरह पांचवीं आहुति में वे जल पुरुष कहलाते हैं। इसी वीर्य में 'मैं' मे समाये हुए सब पदार्थ विद्यमान हैं किन्तु वीर्य रूप में हैं। एक में अनेक हैं। जिस तरह इस देह पिण्ड का मूल रूप वीर्य है। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड का मूल रूप विराट् ब्रह्म है। वीर्य में चेतन अचेतन दोनों है। विराट् ब्रह्म में भी चेतन अचेतन दोनों हैं। ब्रह्म शब्द सर्वव्यापी पदार्थ को कहने वाला है। ब्रह्म, अर्थात् सर्व व्यापक पदार्थ। चेतन अचेतन दोनों पदार्थ, या देह किंवा ब्रह्माण्ड में विद्यमान पदार्थ जब सर्वव्यापक रूप में होते है' तब ब्रह्म कहे जाते हैं। किन्तु वे सब एक रूप में ही रहते हैं। उनकी अनेकता एक रूप में रहती है। सर्व व्यापी, सर्वव्यापक, किंवा ब्रह्म शब्दका ठीक ठीक अर्थ यह होता है कि सब कुछ एक।

संचर और प्रति संचर दोनों रीति से इस सिद्धान्त की परीक्षा हो सकी है, वेद में सृष्टि प्रलय की युक्ति से इस सिद्धान्त को समझाया है। सृष्टि ही संचर है और प्रलय प्रति संचर है। इसको यों भी समझें एक का अनेक हो जाना और अनेक का फिर एक हो जाना। यही सृष्टि प्रलय और यही से चर प्रतिसंचर। गीता की भाषा में इस युक्ति को ज्ञान विज्ञान नाम दिया है। अनेक को एक में देख लेना ज्ञान और एक को ही अनेक रूप में देख समझ लेना विज्ञान है। ज्ञान विज्ञान से, सृष्टि प्रलय से, और संचर प्रति संचर से सब कुछ की एकता समझ में आ जाती है। सब कुछ एक है यही ब्रह्मज्ञान है।

एक का अनेक हो जाना और अनेक का एक हो जाना, यह तब ही हो सकता है जब मूल में एक ही वस्तु हो। और वह एक ही पदार्थ सर्व पदार्थ युक्त हो। और यह

उसका स्वरूप ही हो। शहर में भिन्न भिन्न पुरुषों के अनेक रुप विद्यमान है किन्तु इतने एक हो गये हैं कि अब उनका पृथक करण नहीं हो सकता। सामुद्र सैन्धव ताडाग आदि लवणों को जल में डालकर यदि दस पांच दिन के अनन्तर शोधा जाय तो वे इतने एक मिलेंगे कि उनका पृथक होना असंभव हो जाता है। इसका कारण यह है कि वास्तव में वे सब मूल में एक ही पदार्थ हैं।

'मधुनिलिन्युरशेरसाः' वेदस्तुतिः। स यथा सैन्धव खित्य उदके प्रास्तेमुदकमेवा अनुविलीयते' 'यदास्य सर्वमात्मैवांउमूत्के न कं मश्येत्' छान्दो– उपनिषद्

यह प्रति संचर युक्ति है, प्रलय युक्ति है, किंवा ज्ञान का स्वरूप है। यही संचर और विज्ञान में है। वृक्ष के बीज में यदि, पत्ते डालियां प्रभृति पदार्थ नहीं थे तो फिर आये कहां से। असत् की सत्ता कभी नहीं हो सकी। डाली पत्ते फूल फल सब कुछ बीज में थे पर सब कुछ एक थे। बस एक का ही अनेक वृक्ष हो गया। वृक्ष अनेक है बीज एक है। यह दोनों मूल में एक ही पदार्थ हैं। ब्रह्म और जगत् दोनों एक ही हैं।

बृहदुपलब्ध में तदवयत्त्यवं दोषतया,
यत उदयार्स्तमयौ विकृते मृदिवा अविकृतात्। वेद स्तुतिः।

दोनों एक हैं विश्व और विश्वपति! यह सृष्टि और प्रलय की युक्ति से परीक्षा होती है। एतत्–विश्वं, बृहत्–विश्वपतिः, उपलब्धम्।

यह ज्ञानी लोग समझते हैं अन्त में यह सारा जगत्, ब्रह्म ही मिला, इसमें युक्ति 'अवशेषतया' प्रलय काल में सबके समिटते समिटते यह एक ब्रह्म ही बाकी रह जाता है, इसलिये।

सब वासन मिट्टी के ही विकार हैं, विविधकरण हैं। मिट्टी की ही विविध कृतियां घडा सरावा कुल्हडे वगेरह वासन हैं। वासन, बदलते रहते हैं इसलिये विकृत–विविध–कृत, कहलातें हैं। और मिट्टी कभी बदलती नहीं इसलिये अविकृत कही जाती है। इस अविकृत से ही सारे विकृतों का उद्भव और अस्तमय (प्रलय) होता है। आदि मध्य और अन्त में मिट्टी अविकृत रही आती है। इस अविकृत में ही विकृत वासनों की उत्पत्ति होती है, इसमें ही ये सब रहते हैं और फूट जाने पर मिट्टी में ही समा जाते हैं। क्योंकि मूल में ये सब मिट्टी ही हैं।

यही बात ब्रह्म और जगत् में है, विश्व और विश्वपति में है। ब्रह्म या विशवपति, इस विश्व के उदय समय में स्थिति समय में और अन्त समय अविकृत ही रहता है, और अविकृत ब्रह्म में ही विशव पैदा होता है, रहता है और अन्त में इस अविकृत ब्रह्म में ही समा जाता है। एक नित्य है दुसरा अनित्य है। विश्वपति नित्य है पर विश्व अनित्य है। मैं–देह में, मैं नित्य है, और प्राण देह इन्द्रिय आदि पदार्थ अनित्य हैं। मृत्तिका नित्य है और वासन अनित्य है, क्योंकि बदलते रहते हैं। जो न बदले वह नित्य। आत्मा, मैं या ब्रह्म कभी नहीं बदलता है इसलिये नित्य कहा जाता है। और जो बनता है व अनित्य है। पर असत्य नहीं। जो कभी भी न रहे वह असत्य। जिसकी 'है' यह कभी न कह सके वह असत्य। विश्व ऐसा नहीं है। यह विविध है किन्तु असत्य नहीं। सुवर्ण की तरह गहना सर्वदा न रहे भलें, किन्तु असत्य नहीं। गहने को कह सकते हैं कि कड़ा है, यह

कंठी नहीं। किन्तु उनमें एक भी असत्य नही। सत्य तो हैं। जो 'है' वह सत्य। जो सर्वदा है वह नित्य। जो कभी है कभी नहीं वह अनित्य। पर अनित्य भी सत्य तो है। सुवर्ण सत्य है नित्य है, गहने अनित्य सत्य हैं। विश्वपति सत्य नित्य है पर विश्व अनित्य है सत्य है। रूप और स्वरूप, वस्तु और वस्तु तत्त्व, दो पदार्थ हैं। रूप बदलता रहता है किन्तु स्वरूप में परिवर्तन नहीं होता। गहना वस्तु है और सुवर्ण वस्तु तत्त्व है। जगत् वस्तु है और ब्रह्म वस्तु तत्त्व है। वस्तु और वस्तु तत्त्व दोनों यद्यपि देखने में पृथक दीखते है किन्तु मूल में दोनों एक ही पदार्थ हैं। एक रूप है तो दूसरा स्वरूप है। घड़ा आदि वस्तु है और मिट्टी वस्तु तत्त्व है पर मूल में दोनों एक है। घडा भी मिट्टी है। केवल संस्थान विशेष का भेद है। यह संस्थान (आकार का प्रकार) बदलता रहता ही है। सुवर्ण में सैकडों आकार प्रकार सर्वदा वर्तमान है। कभी किसी आकार का तो कभी किसी आकार का आविर्भावतिरोभाव होता रहता है। एक आकार का आर्विभाव और दूसरे का तिरोभाव यही बदलता है। और यह उस वस्तु तत्व की ही दो शक्तियां हैं। सुवर्ण में आर्विभाव तिरोभाव शक्तियां वर्तमान है। मुदड़ी का कड़ा हो जाता है, इसका अर्थ है कि एक आकार का तिरोभाव होकर दूसरे का आविर्भाव हो जाना। यही अविकृत परिणाम कहा जाता है, वस्तु तत्त्व (स्वरूप) में कुछ भी विकार न आते, जो वस्तु का बदल जाना यही अविकृत परिणाम। ब्रह्म वस्तु तत्त्व का अविकृत परिणाम, यह जगत् वस्तु है। जगत् समाई वस्तुओं को एक रूप में समेट कर यह जगत् या विश्व कहा गया है। ब्रह्म, वस्तु तत्त्व है और विश्व वस्तु है मूल में दोनों एक हैं। सुवर्ण ही गहनों के रूप में फैलकर बैठा है। इसी तरह ब्रह्म भगवान् ही जगत् के रूप में फैलकर विद्यमान है। सुवर्ण अव्यक्त रूप में गहने है तो कड़ा अप्रकट रूप में सुवर्ण है। यदि कड़ा आदि गहने सुवर्ण न होता तो सुवर्ण खरीदने वाला गहना न ले लेता। जैसे सुवर्ण ने गहनों को छुपा रखा है। इसी तरह गहनों ने सुवर्ण छिपा रखा है। सुवर्ण ग्राही गहनों पर दृष्टि नहीं रखता क्योंकि वे सब सुवर्ण ही हैं। ब्रह्म का रूपान्तर ही गहने है।

कितने ही कहते हैं कि सुवर्ण ही सुवर्ण सत्य है, गहने सब असत्य हैं, गहने माया है भ्रम है, सीप में चांदी का भ्रम होता है इस तरह सुवर्ण में गहनों का भ्रम मात्र है। ब्रह्म और जगत् में भी यह हो सकता है। जगत् जीव आदि पदार्थ सब असत्य हैं मिथ्या है। केवल ब्रह्म ही सत्य है। सत्य ब्रह्म में ही माया से भ्रम से जगत् दीखता है। जगत् सब विकार है नश्वर है। ब्रह्म में विकार और नश्वरता हो न ही सकती इसलिये यह विश्व असत्य ही भ्रम से ब्रह्म में दीखता है वास्तव में कुछ नहीं हैं केवल ब्रह्म है।

किन्तु इस सिद्धान्त में यह भारी त्रुटि है। गहने भ्रम नही हो सकते। भ्रम तीनों काल में बाधित है। आदि मध्य अन्त तीनों काल में नहीं है। सीप मे चांदी आदि में नहीं थी, भ्रम निकल जाने पर अन्त में भी नही रहेगी, और मध्य में जब भान हो रहा है तब ही वास्तव में तो नही ही है। यह बात गहनों में नहीं है। गहनों का बाध नहीं होता किन्तु बदल जाते हैं। वस्तु का समान्तर हो जाना भ्रम नहीं कहा जाता। सुवर्ण भी सुवर्ण हैं और गहने भी वही सुवर्ण ही है। केवल सुवर्ण ने रूपान्तर धारण कर लिया है, यह भ्रम नहीं हो सकता। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग के शिल्पकार– श्रीगिरिधरजी

–डॉ. राकेश तैलंग

श्रीमद्‌वल्लभाचार्य की वंश परम्परा में ऐसे अनेक आचार्य हुए हैं जिन्होंने वैष्णव धर्म के सम्यक् उत्थान, भारतीय धार्मिक व सांस्कृतिक परम्पराओं की धरोहरों की रक्षा एवं भक्त प्रवण मानसिकता के निरन्तर विकास हेतु सन्तुलित वातावरण का सृजन करके जन जन की परोक्षतः सेवा की है, पुष्टि सम्प्रदाय के इतिहास में ऐसे ज्योति पुरुषों के मध्य वे महात्मा नींव का प्रस्तर अथवा नींव की ईंट के रूप में स्मरणीय व वन्दनीय कहे जा सकते हैं, जिन्होंने महाप्रभुजी की भक्ति दर्शन संवेदना व गुसांईजी के सामाजिक सरोकारों को मूर्तिमन्त करने के भगीरथ अथवा मूलग्राह्यी प्रयास किए। प्रभुचरण श्रीगुसाँईजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजी ऐसे ही शिल्पकार कहे जा सकते हैं।

वि.सं. 1597 कार्तिक शुक्ल 12 को पू. पा. गुसांईजी व श्रीरूक्मणी बहूजी के पुत्र के रूप में प्रकट श्रीगिरिधरजी अपने छः भ्राता व चार बहिनों में ज्येष्ठ थे। पुष्टि संप्रदाय की भावनानुसार श्रीवल्लभाचार्य श्रीविट्ठलनाथजी के बाद आपको 'धर्मी' स्वरूप माना गया है। समस्त दिव्य धर्मों व संजीवनी विद्या प्राप्त श्रीगिरिधरजी के धर्मोरूप होने से लीला प्रवेशोपरान्त आपकी चरण पादुकाओं को पिता व पितामह की पादुकाओं के साथ सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान किया गया।

पुष्टि संप्रदाय में श्रीगिरिधरजी को प्रतिपक्षी आचार्य के रूप में समीक्षा अथवा विमर्श की नई तकनीक के सर्जक के रूप में माना जाता है। इस शैली द्वारा स्वयं के अभिमत व सिद्धान्तों को पुष्ट करने के लिए भाष्यकार अथवा विमर्शकार खण्डन का मार्ग अपनाता है, गुरूजन से प्रतिप्रश्न करता है, और इस बहाने स्वमत को ही पुष्ट कराता है, नए चिन्तन क्षितिजों की जानकारी एक विनम्र शिष्य के रूप में प्राप्त करता है। श्रीगुसांईजी के 'विद्वन्मण्डन' ग्रन्थ पर उन्होंने प्रतिपक्षी बन श्रीगिरिधरजी ने प्रश्न किए एवं अन्य मार्गी की संभावित जिज्ञासा का समाधान अपने पितृचरण से प्राप्त किया था। शैक्षिक प्रोद्यौगिकी के ऐसे अनूठे प्रतिमान के तब प्रणेता बने थे श्रीगिरिधरजी।

वैष्णव मतावलम्बियों का मायावादियों से संघर्ष भारतीय दर्शन के इतिहास में कोई नई बात नहीं है, किन्तु वे श्रीगिरिधरजी ही थे जिन्होंने कामर नामक ग्राम में न केवल मायावादियों को परास्त किया बल्कि विष्णुस्वामी एवं वल्लभ सम्प्रदाय से दीक्षित कर उनका मार्गान्तरण किया था। यही वह समय था जब वे प्रतिदिन कामर से गोपालपुर की पैदल यात्रा कर गोपालपुर में श्रीनाथजी की सेवा कर प्रभु के प्रति अपनी अगाध भक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते थे।

श्रीगिरिधरजी का युग सांस्कृतिक–धार्मिक विशृंखलताओं का युग था, यवन शासकों एवं भारतवर्ष के ही अन्तःकलहों, धार्मिक उन्मादों एवं राज्य, धर्म व जन जन के मध्य संवादहीनता के कारण असहिष्णुता का बोलबाला था। ऐसे में किसी भी धार्मिकमत को सर्वतोन्मुख बनाने के लिए एक सुदृढ़ आन्तरिक सामाजिक ढाँचा तैयार करने की जहाँ आवश्यकता थी वहीं एकता के प्रदर्शन की भी भागवत नीतिगत जरूरत

थी। श्रीगिरिधरजी ने पुष्टिमार्ग को जनजन की आस्था के एकीकृत केन्द्र के रूप में विकसित करने के लिए सप्त स्वरूपों में एकीकृत अन्नकूट, छप्पनभोग, कुण्डवारा आयोजन की परम्पराओं का प्रवर्तन किया। इस बहाने पुष्टि धर्म को जन सामान्य के व्यापक मानव धर्म के रूप में विकसित होने के मार्ग स्वतः ही प्रशस्त हो गए। श्रीनाथजी को समस्त सेव्य रूपों के प्रधान आराध्य के रूप में प्रतिष्ठित करने की उनकी मौलिक दृष्टि रही और इस दिशा में प्रभु श्रीनाथजी की हवेली को 'सिंगल अम्ब्रेला' के रूप में विकसित करने हेतु उक्त सामुहिक मनोरथों के अतिरिक्त श्रीनवनीतप्रियजी को यमुनाजी के गोद के ठाकुरजी के रूप में पधराने एवं श्रीमथुरेशजी को प्रथम गादी के रूप में आपश्री के नेतृत्व में पुष्पित पल्लवित होने का गौरव प्रदान किया। यही नेतृत्व–गुण उन्हें पुष्टि सम्प्रदाय के शीर्षस्थ ज्योति पुरूषों में रेखांकित करता है।

पुष्टि सम्प्रदाय के प्रारम्भिक युग में श्रीगिरिधरजी का अवदान इस दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि तब चिन्तन से क्रिया की ओर बढ़ता यह भक्तिमार्ग स्वयं को जनाकांक्षी धर्मपंथ के रूप में स्थापित करने के लिए संघर्षरत था। एक ओर मायावादियों के साथ वैचारिक धरातल पर संघर्ष तो दूसरी ओर इतर वैष्णव मतावलम्बियों के साथ प्रतिस्पर्द्धा एवं सृष्टि विस्तार के प्रयासों का अनवरत सोचगत युद्ध। ऐसे में, धर्म को आम जन के सरोकारों से जोड़ने के लिए पुष्टिमार्ग की प्राथमिक चुनौती थी संस्थागत विकास के आधारभूत प्रतिमान विकसित करना। श्रीगिरिधरजी के प्रयासों से जतीपुरा पुष्टिमार्ग का केन्द्र बन सका, साथ ही सात स्वरूपों की श्रीनाथजी से सम्बद्धता कर आपने वैष्णव सृष्टि के विस्तार के मार्ग खोल दिए। आमजन को इस मार्ग में 'वी फीलिंग' का बोध हुआ– आचार्य परिवारों में भी और विभिन्न आराध्य स्वरूपों में भी। वैष्णव सृष्टि के विस्तार का एक प्लेटफॉर्म बना जिसके प्रणेता बने श्रीगिरिधरजी। इस परम्परा को आगे बढ़ाने की दिशा में श्रीगिरिधरजी के साहसिक प्रयासों का स्मरण हमारे लिए प्रासांगिक है। श्रीनवनीतप्रियजी को पूर्ण सुरक्षा के साथ गोकुल तक पधराना, विपरीत परिस्थितियों में श्रीनाथजी को सुरक्षार्थ जतीपुरा से दण्डवती शिला और वहाँ से अत्यधिक दुस्साहस एवं चुनौतियाँ के बीच मथुरा में 'सतधरा' नामक स्थान पर पधराना वे दूरगामी दृष्टि से युक्त प्रयास थे जिन्हें युगों बाद उन विकट परिस्थितियों के सन्दर्भ में जब हम याद करते हैं तो रोमांचित हो उठते हैं। जहांगीरी हुकुम से माला की रक्षा कराने के प्रसंग में हिन्दुत्व की रक्षा और भारतीय संस्कृति के सम्मान के संरक्षण में अपने अनुज श्रीगोकुलनाथजी के मनोबल संवर्द्धनकर्त्ता के रूप में श्रीगिरिधरजी को पुष्टि जगत् कभी विस्मृत नहीं कर सकेगा। दाक्षिणात्य कॉंकरवाड़ रूपी हिमालय की गोद से पुष्टि दर्शन की गंगौत्री यमुनोत्री का अवतरण कराने वाले श्रीमहाप्रभुजी व श्रीगुसांईजी की अजस्र भक्तिधारा को जतीपुरावत् मैदानी भाग में प्रवाहित कराने में श्रीगिरिधरजी को जो प्रयास करने पड़े होंगे, उनकी कल्पना ही कही जा सकती है। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

''कमल मुख देखत कौन अघाय।''

—श्री हरिनारायण नीमा, उज्जैन

अष्टछापीय श्रीकृष्णदासजी ने श्रीगोवर्द्धनोद्धरणधीर प्रभु श्रीनाथजी की रूप—माधुरी का वर्णन अपने अग्रांकित पद में यों किया है—

''कमल मुख देखत कौन अघाय।
सुनरी सखी लोचन अलि मेरे,
मुदित रहे अरूझाय।।१।।
मुक्तामाल लाल उर ऊपर,
जनु फूली बनराय।
गोवर्द्धन धर के अंग—अंग पर,
'कृष्णदास' बलिजाय।।२।।''

अधिकारी श्रीकृष्णदासजी ने ब्रजराज कुंवर के श्रीमुख की तुलना कमल पुष्प से करते हुए अपनी आँखों को भ्रमरों की तरह बतलाया है। मधुरस पान करने में निमग्न भ्रमर कभी अघाता नहीं है, इसी तरह उन श्यामसुंदर के श्रीमुख को अहर्निश भक्तजन निहारते रहते हैं। यथार्थतः पुष्पराज कमल, कमला कांत की मधुर मुस्कान है। कविवर ने कमल पुष्प की उपमा से अपने हृदगत भावों को मंजुल स्वरूप प्रदान किया है।

श्रीहरिराय महाप्रभु भी आज्ञा करते हैं— जीवन में यदि आनंद एवं मंगल के साथ पूर्ण शान्ति तथा स्वस्थता की उपलब्धि करना हो तो जिस प्रकार सरोवर में 'कमल' रहता है, उसी प्रकार हमें भी अपने गृहस्थाश्रम में रहना चाहिये।'' कितनी सारपूर्ण शिक्षा आचार्य श्री दे रहे हैं— धन्य है।

जल से परिपूर्ण सरोवर में रहते हुए भी कमल की पंखुड़ियाँ को जल की एक बूंद भी गीला नहीं कर पाती और कमल पुष्प कोरा व सूखा ही रहता है। सरोवर में जल की बूंदों से भीगने या गीले होने का जो दुःखमय प्रसंग है, उसका भी पुष्पराज पर कोई प्रभाव नहीं होता और वह अपने हृदय की सुन्दरता को भुवन भास्कर की किरणों के समक्ष प्रकट कर नाचता—कूदता है प्रसन्नचित ही सरोवर में रहता है। आचार्य भगवंत ने कमल पुष्प से प्रेरणा लेकर वैष्णवी भगवदीय जीवन जीने की शिक्षा दी है। कमल के समान कोमल हृदय और जल कमलवत् रहना चाहिये।

कमल ही नहीं हर पुष्प आत्म विश्वास, निश्छलता, सौन्दर्य, सौरभ, मोहकता और मस्ती के जीवन का परिचायक होता है। पुष्प कमरंद की सुवास में हवा, पानी, पंछी, मिट्टी, सूर्य और चन्द्रमा सभी की सह भागिता होती है। पुष्प का जीवन अजर—अमर नहीं होता, कलिका से खिलकर सुमन बनना, सुगंध राशि को खुले हाथो लुटाना,

परागकणों से मधुकरों की प्यास बुझाना और दो–दिन की जिन्दगी जीकर मिट जाना ही उसका परिचय है, जीवन का इतिहास है। कमल पुष्प सभी को मुस्कराते हुए जीवन जीने की सीख देता है। श्रीजी की सेवा में समर्पित ही कमल अपने लघु जीवन को सार्थक करता है।

कमल से राजाधिराज को बहुत प्रीति है। श्रीहस्त में कमल, पलने में कमल, हिंडोरे में कमल, बंगले में कमल, माला में कमल, छड़ी में कमल, पिछवाई और खण्डपाट में कमल, आरती की थाली में अष्टदल कमल और श्रीमुख, नेत्र, श्रीहस्त, श्रीचरणों की कमल की उपमा दी गई है। श्रीसूर का विनय पद है– ''चरण कमल वंदों हरिराई; इसी संदर्भ में दूसरा पद अत्यन्त भावूपर्ण है–

''चरण कमल वंदों जगदीस जे गोधन के संग धाये। जे पद कमल धूरि लपटानों कर गहिके गोपी उर लाये।।१।। जे पद कमल युधिष्टिर पूजे, राज सूय पै चलि आये।

जे पद कमल पितामह भीष्म भारत में देख न पाये।।२।

जे पद कमल शंभु, चतुरानन ह्रदय कमल अंतर राखे। जे पद कमल रमा उर भूषण, वेद, भागवत, मुनि भाखे।।३।।

जे पद कमल लोक पावन त्रय, बलि राजा के पीठ धरे। ते पद कमल सूर के स्वामी कालीफन पर नृत्य करे।।४।।''

अनन्त महिमा है श्रीजी के चरण कमलों की। मानस कार ने तो सरोवर में खिले कमलों की उपमा में चरम दार्शनिक पक्ष प्रकट करते हुए कहा है।

'फूले कमल सोह सर कैसा?

निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसा।।''

अन्त में पुनः आचार्यश्री के पद का उल्लेख करना चाहूँगा– आप श्री मन को 'मधुप' कहकर मधुरस पान हेतु उस अलौकिक स्थल पर चलने का निर्देश देते हैं, जहां श्रीवल्लभ प्रभु के दास कमल गण भजनानंद में निमग्न रहते हैं– पद की प्रारंभिक पंक्तियां हैं–

''मधुप मन वहां चली उड़ि जाय, जहां श्रीवल्लभ के दास कमल गण भजनानंद रस पाय।''

स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि रात्रि में कमल पुष्प बंद हो जाता है फिर भजनानंद में विरस कैसे सहन होगा। आपश्री आज्ञा करते हैं– ''जहां अविद्या निशा न व्यापत सुख सो भृंग रहे लिपटाय।'' उस परम भूमि में अविद्या का अंधकार है ही नहीं अतएव भजनानंद रस पान सतत करते रहो। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

श्रीकृष्ण के समय का निर्धारण

—डॉ. योगेश्वर दयाल शर्मा (शास्त्री), जयपुर

भगवान् श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व जितना लोकप्रिय हैं उतना ही विवादास्पद् भी। उनके कालनिर्धारण की स्थिति तो और भी जटिल है। इस जटिलता का कारण पाश्चात्य विद्वानों का दुराग्रह और पाश्चात्य मानसिकता का प्रभाव दोनों ही है। उन दोनों के अलावा निश्चित ऐतिहासिक साक्ष्यों का अभाव भी एक महत्वपूर्ण कारण है— जो कालनिर्धारण में बाधा उपस्थित करता है। क्योंकि प्राचीन भारतीय परम्परा वेदों में ऐतिहासिक तथ्यों का समर्थन करती है— 'भूतं भव्यं भविष्यTच, सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति' (मनुस्मृति)। इसलिए भारतीय विद्वानों ने श्रीकृष्ण का उत्स वैदिक ग्रन्थों में खोजा है। 'ऋग्वेद' के अष्टम मण्डल के 85, 86, 87 वें सूक्त तथा दशम मण्डल के 42, 43, 44 वें सूक्त के दृष्टा कृष्ण ऋषि हैं। कविराज गोपीनाथजी ने 'गावो भूरिशृंङ्गाः'॰ मन्त्र में गोलोक वर्णन का संकेत माना है। श्रीगोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी ने 'स्तोत्रं राधानां पते॰' (ऋ1/अ. 6.30.5) को श्रीराधाकृष्ण के अवतार का मूल माना है। महाभारत के प्रख्यात टीकाकार नीलकण्ठ चतुर्धर ने ऋग्वेद के मन्त्रों में कृष्ण चरित्र तथा लीला का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए 'मन्त्रभागवत' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। पं. बलदेव उपाध्याय का मत है कि— धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने पर भी यह ग्रन्थ विशेष महत्व नहीं रखता। 'कौशीतकि—ब्राह्मण' (30/9) में अंगिरस शिष्य कृष्ण का वर्णन है। 'शतपथ—ब्राह्मण' में यज्ञ कृष्ण नाम से अभिहित है— 'यज्ञो हि कृष्णः' (3.2.1.28)। 'छान्दोग्योपनिषद्' (3.17.6) में तो श्रीकृष्ण का देवकी पुत्र के रूप में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त है। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायजी का मत है कि— अथर्वसंहिता में कृष्णकेशी नामक असुर के हन्ता कृष्ण की कथा है। वे वसुदेवनन्दन ही हैं, उसमें सन्देह नहीं।

इस प्रकार विभिन्न वैदिक ग्रन्थों से श्रीकृष्ण का अस्तित्व सिद्ध है; चाहे वह किसी रुप में हो। तथापि कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता को ही संदिग्ध माना है; उनमें कीथ, वार्थ और हॉपकिन्स का नाम उल्लेखनीय है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने भी 'अनासक्ति—योग' नामक अपने गीतानुवाद की प्रस्तावना में महाभारत को ऐतिहासिक युद्ध न मानते हुए श्रीकृष्ण को काल्पनिक पुरुष माना हैं। वासुदेव श्रीकृष्ण के विषय में हुए अनुसंधानों से यह मत अमान्य हो चुका है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ. वी. जी. भण्डारकर के "Vaishnavism, Savism and other minor Sects" तथा डॉ. हेमचन्द्र चौधरी के "Material for the Study of early History of the Vaishnav Sect" में वासुदेव कृष्ण का ऐतिहासिक अस्तित्व स्वीकृत हो गया है। इन दोनों विद्वानों ने अपनी खोजों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि— वासुदेव कृष्ण एक मानवीय व्यक्तित्व थे। उनका जन्म मथुरा के सात्वत वृष्णिवंश में हुआ था जिसका यादव जाति से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। 'श्रीकृष्ण ऐतिहासिक

पुरुष हैं न कि कल्पित व्यक्तित्व'– इस तथ्य की प्रामाणिकता हेतु विभिन्न महत्वपूर्ण साक्ष्यों का विवरण निम्नलिखित है–

1. अंग्रेज पुरावेत्ता डॉ. ई. जे. एच. मैके को सिन्धुघाटी के उत्खनन से सन् 1927 में प्राप्त खड़िया मिट्टी की एक मुद्रा में एक किशोर को दो वृक्षों को उखाड़ते हुए दिखाया गया है और दोनों वृक्षों में से दो मानव आकृतियाँ निकलती दिखाई देती हैं। उनके अनुसार यह श्रीकृष्ण द्वारा यमलार्जुन वृक्षों के उखाड़ने की घटना का अंकन है। अतः यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि सिन्धुवासी (4000–4500 वर्ष पूर्व) श्रीकृष्ण से निश्चय ही परिचित थे (फर्दर एक्जकेवेशंस एट मोहनजोदड़ो 1938 पृ. 355)।

2. गोल्ड स्टूकर तथा रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने पाणिनि का समय सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व माना है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' में 'वासुदेव' और 'अर्जुन' शब्दों से षष्ठी विभक्ति के अर्थ में 'वुन' प्रत्यय मानकर 'वासुदेवक' और 'अर्जुनक' शब्दों का प्रयोग किया है। इससे ध्वनित होता है कि– वासुदेव कृष्ण उनके समय तक पूज्य देवता का रूप ले चुके थे। ('वासुदेवार्ज्जुनाभ्यां वुन्' पा. सू. 4.3.98)

3. बौद्ध ग्रन्थों में 'महानिद्देस' नामक ग्रन्थ में वासुदेव का व्रत रखने वाले लोगों की चर्चा है। एक अन्य ग्रन्थ 'घट जातक' में कृष्ण–कथा का विस्तृत वर्णन है। यह वर्णन महाभारत तथा पुराणों में प्राप्त कृष्णकथा से अधिक साम्य रखता है। 'महाउमग्ग जातक' में भी वासुदेव कृष्ण का अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख है। 'ललित विस्तर' में कृष्ण नामक एक राजा का उल्लेख है। इस प्रकार भगवान् बुद्ध का पूर्व जन्म में वासुदेव होना यह सिद्ध करता है कि उस समय वासुदेव कृष्ण धार्मिक जगत् में पूर्ण प्रतिष्ठित हो चुके थे।

4. जैन परम्परा में त्रिषष्टि शलाका पुरुषों की कल्पना की गई है। इन श्रेष्ठ शलाका पुरुषों में कृष्ण नवम वासुदेव के रूप में मान्य हैं। जैन धर्मानुसार श्रीकृष्ण नेमिनाथजी के समकालीन थे, जो ईसा से पूर्व 817 वें वर्ष से भी पहिले हो चुके थे। इस प्रकार कृष्ण का समय ईसा से नवीं शताब्दी पूर्व ही आता है। (अर्ली हिस्ट्री आव दि वैष्णव सैक्ट– डॉ. हेमचन्द्रराम चौधरी)

5. सिल्यूकस निकातर का यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ई. पू. 400 में भारत आया था, उसने अपनी यात्रा के विवरण में कृष्ण तथा मथुरा दोनों का वर्णन किया है।

6. 'कर्टियस' ने भी लिखा है कि जब राजा पोरस की सेना सिकन्दर की सेना से लोहा लेने के लिए आगे बढ़ी तो उसके अग्रभाग में हेराक्लीज (कृष्ण) की मूर्ति थी। मैसिडोनिया के राजा (मकइनिया) के राजा सिकन्दर महान् का समय 356–323 ई. पू. माना गया है। (भारतीय इतिहासकोश, पृ. 471)

7. 'भगवती सूत्र' (400 ई. पू.) में महावीर तथा आजीवक मक्खलि गोशाल की यात्रा का जो विवरण प्राप्त है उसमें अनेक स्थानों पर वासुदेव व बलदेव के मन्दिरों का उल्लेख हैं।

8. राजस्थान मे चित्तौड़ के समीप स्थित मध्यमिका नगरी कृष्ण पूजा केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध थी। यहां के हाथी वाड़ा (नारायणवाटिका) नामक स्थान से ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के अन्त का एक ब्राह्मी लिपि में शिलालेख मिला है जो इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि ई. पू. तीसरी शती में देवरूप में श्रीकृष्ण की मूर्तिपूजा होने लगी थी।

9. वेसनगर अभिलेख (विदिशा म.प्र.), 200 ई. पू. से परिलक्षित होता है कि– राजदूत 'हेलियोडोरस' जो तक्षशिला, गान्धार का शासक था, जो स्वयं को भागवत (वासुदेव पूजक) कहता था– ने 'देव वासुदेव' की स्मृति में एक गरुड़ ध्वज स्थापित किया था।

10. राजस्थान के बड़ली (अजमेर) से ई. पू. द्वितीय शती का एक भग्न ब्राह्मी–लेख मिला है। उससे ज्ञात होता है कि मध्यमिका के किसी निवासी द्वारा बड़ली में श्रीकृष्ण मन्दिर का निर्माण कराया गया था।

11. ऐखानम (अफगानिस्तान) से द्वितीय शती ई. पू. के अगथोक्लियस के चाँदी के सिक्के प्राप्त हुए हैं, जिनमें एक ओर बलराम और दूसरी ओर कृष्ण का अंकन है। (आर्टस् एशियाटिक्स– 1973, पृ. 123)।

12. प्राकृत भाषा में लिखित नानाघाट अभिलेख (ई. पू. द्वितीया शती) में इन्द्रादि देवों के साथ संकर्षण–वासुदेव का उल्लेख है।

13. संस्कृत व्याकरण के प्रसिद्ध आचार्य पतTजलि (150 ई. पू.) ने अष्टाध्यायी पर अपने प्रसिद्ध टीकाग्रन्थ महाभाष्य में श्रीकृष्ण का विभिन्न स्थलों पर स्पष्ट उल्लेख किया है।

14. मोर अभिलेख, प्रथम शती ई. पू. में वृष्णियों पंचवीराणा प्रतिभाः॰।' ये सभी वीर श्रीकृष्ण के परिवार से सम्बद्ध हैं। 'वायु–पुराण' (अ.79/1–2) में भी वृष्णियों के इन पाँच वीरों (व्यूह) की चर्चा प्राप्त होती है।

15. एरण (सागर, मध्यप्रदेश) से प्राप्त शिलालेख प्रसिद्ध गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त (330 ई. से 380 ई.) से सम्बन्धित है। इसके अनुसार सम्राट ने एक स्तम्भ स्थापित कराया था, जो भगवान् वासुदेव के मन्दिर के सामने बनवाया था।

एतावता विभिन्न ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर श्रीकृष्ण का ऐतिहासिक पुरुष होना सुतरां सिद्ध है।

dky fu/kkZj.k %& श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक व्यक्तित्व मानकर उनके काल निर्धारण का विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रयास किया गया है उनमें से प्रमुख विद्वानों के मतों का पर्यालोचन करने के बाद ही काल निर्णय युक्ति युक्त होगा अतः स्वमतस्थापन से पूर्व उन्हें प्रस्तुत किया जा रहा है; यथा–

(1) 'सर गॉडफ्रे हिगिन्स' (प्रसिद्ध अंग्रेज पुरातत्त्वविद्) ने **'Anacalypsis.' Page-160** पर्याप्त अनुसंधान एवं गवेषणा के बाद यह निश्चित किया कि– श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे और उनका जन्म 'पीतल युग' (**Brazen Age**) के अन्त में हुआ। इनके मत में– ईसा मसीह की अपेक्षा श्रीकृष्ण का समय अधिक प्राचीन है।

भारतीय परम्परा भी तृतीय युग अर्थात् द्वापर–युग में कृष्ण जन्म का समर्थन करती है।

(2) 'सर विलियम जोन्स' (रॉयल एशियाटिक सोसायटी के संस्थापक) ने 'Asiatic Researches' Page-273 में भारत में अनेक वर्ष रहने के बाद लिखा था–

'हमें इस बात का निश्चय है कि हमारे प्रभु (ईसा मसीह) के जन्म से बहुत पहले और कदाचित् यूनान के आदि कवि होमर–जिनका काल ईस्वी सन् से 900 वर्ष पूर्व माना जाता है– से भी पूर्व श्रीकृष्ण का नाम और उनके जीवन का स्थूल वृत्तान्त भारतीयों को विदित था।

(3) 'कैप्टन विलफर्ड' ने 'Chronology of the Hindus' में युधिष्ठिर के समसामयिक कृष्ण और महर्षि पराशर का काल ई. पू. 1780 वर्ष निश्चित किया है।

(4) 'मैक्डॉनल' के 'History of Sanskrit literature. Page-233' के अनुसार कृष्ण का समय ई. पू. 600 वर्ष है।

(5) 'डॉ. सीताराम प्रधान' (Chronology of Ancient India.) का मत है कि– कुरुक्षेत्र का युद्ध 1150 और 1152 के मध्य ईसा से पूर्व हुआ था, जिसमें कृष्ण अर्जुन के सारथि थे।

(6) 'रावबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य' का अनुमान महाभारत, हरिवंश पुराण, शतपथ–ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद् और मेगास्थनीज के लेखों पर आधारित है। श्री वैद्य श्रीकृष्ण का जन्म शक संवत् से 3263 वर्ष पूर्व अथवा ईस्वी सन् से 3185 वर्ष पूर्व भाद्रपद कृष्ण अष्टमी (दक्षिणीय गणना के अनुसार श्रावण कृष्ण अष्टमी) को अर्थात् अगस्त मास में तथा महाभारत युद्ध के 36 वर्ष बाद ईस्वी सन् से 3066 वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण का परमधाम गमन मानते हैं। (श्रीकृष्णा^, पृ. 331–332)

(7) 'लोकमान्य तिलक' (गीता रहस्य, पृ. 549) श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं। उनका विचार है कि महाभारत, गीता और गोकुल के कन्हैया अभिन्न हैं। पुराण गणना और शककाल तक के राजाओं की पीढ़ियों के आधार पर वे कहते हैं कि– ईसाई सन् के लगभग 1400 वर्ष पहले भारत युद्ध और पाण्डव हुए होंगे अर्थात् श्रीकृष्ण का अवतारकाल भी यही हैं।

(8) 'श्रीबंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय' (कृष्ण चरित्र, उपक्रमणिका, पृ. 24) ने ज्योतिष, विष्णु पुराण तथा महाभारत के विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर महाभारत युद्ध को ई. पू. 1430 में होना माना है। यदि उस मत के परिपेक्ष्य में देखा जाये तो 1430+2008=3438 वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध हुआ था और भारत विग्रह के समय कृष्ण की आयु 90 वर्ष मान लेने पर उनका समय 3508 वर्ष पूर्व सिद्ध होता है।

(9) 'डॉ. हेमेन्द्रराय चौधरी' (अर्ली हिस्ट्री आव दि वैष्णव सैक्ट, पृ. 64) पौराणिक तथा ज्योतिष गणना की सत्यता में सन्देहशील हैं। फिर भी वे मानते हैं कि श्रीकृष्ण बुद्ध से पहले हुए हैं क्योंकि कृष्ण का छान्दाग्योपनिषद् में वर्णन है, जो प्राग् बौद्धिक रचना है।

(10) 'आइने–अकबरी' के लेखक 'अबुल फजल' ने लिखा है– इस युग के आदि में राजा युधिष्ठिर ने विश्व विजय किया और एक युग का अन्त समझकर अपने राज्यकाल से एक संवत चलाया। उस समय से आज तक दीन–इलाही का 40 वाँ वर्ष है, 4696 वर्ष बीत गये हैं।' यह 40 वाँ वर्ष 11 मार्च 1556 ई. को पड़ा था। यदि उसमें वर्तमान सन् 2008 तक के 452 वर्ष और जोड़ दें तो 4696+452=5148 वर्ष पूर्व इस संवत् का आरम्भ सिद्ध होता है। क्योंकि महाभारतानुसार युधिष्ठिर सवंत् से 90 वर्ष पूर्व कृष्णावतार मान्य है अतः 5148+90=5238 वर्ष पूर्व कृष्णावतार होना निश्चित होता है। **(Akbar the great. Smith.)**।

(11) स्वामी श्रीहरिहरानन्द सरस्वती (श्रीकरपात्रीजी) ने 'गीता जयन्ति और भीष्मोत्क्रान्ति, पृ. 217' में विभिन्न मतों की आलोचना करके महाभारत के अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर युधिष्ठिर संवत्सर से 90 वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण का अवतार माना है। इस रीति से वे वि. सं. 2042 तक 5087+90=5177 वर्ष पूर्व कृष्णावतार मानते हैं। यदि उसमें वर्तमान वि. सं. 2065 (सन् 2008) के 23 वर्ष और जोड़ दिये जायें तो 5200 वर्ष पूर्व कृष्णावतार होना सिद्ध है।

अतः हमारा निश्चित मत है कि प्राचीन परम्परानुसार मान्य 28 वें द्वापर के अन्त में 5200 वर्ष पूर्व ही श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था–

'अष्टाविंशति में तद्वत् द्वापररस्यांश संक्षये।
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्ठिकुले प्रभुः।।' (वायु पुराण 98.97)

द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पार्यवसानिके।
प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुरायां भविष्यति।।' महाभारत, शान्ति पर्व 339–88.89

श्रीमद्भागवत के अनुसार– भगवान् श्रीकृष्ण ने 125 वर्ष तक प्रकट लीला करके 126 वें वर्ष में लीलासंवरण किया था–

'यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम।
शरच्छतं व्यतीताय पचविंशधिकं प्रभो।।' भा. 11.6.25।

अतएव, श्रीकृष्ण जन्म (5200) के साथ 126 वर्ष जोड़ने पर उनका स्वधाम गमनकाल 5326 वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। 'महाभारत' के अनुसार यह समय युद्ध के पश्चात् 36 वाँ वर्ष था–

'षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः।।' म.भा.मौ.प.1.1।

'षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे वृष्णीनामनयो महान्।
अन्योन्यं मुसलैस्ते तु निजघ्नुः कालचोदिंताः।।' तत्रैव, मौ.प.1.13।

'यः स मेघवपुः श्रीमान् वृहत्पंकजलोच नः।
स कृष्णः सह रामेण त्यक्त्वा देहं दिवं गतः।।' तत्रैव, मौ.प.8.7.7½।

इस प्रकार सुतरां सिद्ध है कि युद्ध के समय श्रीकृष्ण 90 वर्ष के थे।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

"भगवत्प्रेम में प्रेमाश्रुओं की महत्ता"

—गोपालदास व. नीमा, इन्दौर

भगवान् की प्राप्ति के लिये जिस साधन के हृदय में भगवत्—विरह की अग्नि धधकती रहती है, उसे संसार से वैराग्य हो जाता है। भगवत्प्राप्ति के लिये उसकी आँखों से निरन्तर अश्रुपात होता ही रहता है। महाप्रभु चैतन्य के विषय में कहा जाता है कि वे 18 वर्षों तक जगन्नाथपुरी में इतना रोते रहे कि उनके आँसुओं के जल से अनेक कुण्ड भर गये। जब वे कथा सत्संग में भगवत् कथा सुनाते तब श्रोताओं के नेत्र भी जल से भर जाया करते थे। एक समय की बात है कि एक श्रोता को कभी भी कथा में अश्रुपात नहीं हुआ तो उनके दूसरे दिन सत्संग के समय अपने नेत्रों में मिर्ची डाल ली एवं रोने लगा। यह दृश्य उसके पास बैठे एक श्रोता ने देखा तो उसे यह कृत्य अच्छा नहीं लगा। जब कथा का विराम हुआ उस वक्त उस व्यक्ति को जिसने आंखों में मिरची डाली थी और रो रहा था, चैतन्य महाप्रभु के पास ले जाया गया, तब महाप्रभु चैतन्य का हृदय पसीज गया और आपने उस प्रेमी भक्त को हृदय से लगा लिया। एवं कहा कि इसने झूठे ही यह कृत्य किया लेकिन यह भक्त सर्वश्रेष्ठ है। चैतन्य महाप्रभु स्वामिनीजी का स्वरूप है— ऐसे उस भक्त ने महाप्रभु के हृदय—स्पर्श का सुख पाकर परम भक्त हो गया। पारस से स्पर्श होने पर लोहा स्वर्ण होता है, लेकिन चैतन्य महाप्रभु के हृदय स्पर्श सुख से उस श्रोता के हृदय में भी प्रभु का निवास सर्वदा प्राप्त हो गया।

रास के समय भी जब प्रभु गोपीजनों के अहंकार के कारण अन्तर्धान हो गये तब गोपीजनों ने गोपी गीत गाया और कृष्ण दर्शन की लालश में वे बहुत रोई तब प्रभु पुनः प्रकट हुए।

जब श्रीकृष्ण ने रास का विचार किया, तब आपने वेणुनाद किया, जिसे सुन गोपियाँ दौड़ी चली आई एवं वे श्रीकृष्ण के समीप पहुंची। अनेक गोपियों के पतियों ने रात्री में जंगल में जाने से उने रोका और दरवाजा बंद कर दिया। उन गोपियों ने विरह कर अपने पुण्य और पाप दोनों को नष्ट कर दिया एवं देह त्याग कर नूतन देह से कृष्ण के समीप पहले पहुंच गई।

रसखान तीन दिवस तीन रात्री तक जतीपुरा में अपने मेहबूब के दर्शन के लिए विरह के प्रेमाश्रु बहाता रहा अन्न जल वह छोड़ चुका था। उसकी दशा श्रीश्रीनाथजी को सहन नहीं हुई और आपने भक्त के सन्मुख प्रकट होकर वेणुनाद किया। रसखान की दशा खराब हो गई। जब वह प्रभु मिलन हेतु श्रीश्रीनाथजी के सन्मुख पकड़ने के हेतु दौड़ा, श्रीश्रीनाथजी मंदिर में भाग गए और गुंसाईजी को कहा कि तुरन्त रसखान को नाम निवेदन एवं ब्रह्मसंबंध कराओं और उसे मेरे सन्मुख करो। उत्थापन के समय जब उसका ब्रह्मसंबंध हुआ और जब वह जाने लगा तब श्रीश्रीनाथजी सिंहासन से नीचे

पधारे और रसखान का हाथ अपने श्रीहस्त में लेकर उससे बोले साले उस समय तू मेरे को पकड़ने के लिए दौड़ा था आज मैं तुझे पकड़ रहा हूँ। इस प्रकार दर्शन सुख स्पर्श सुख प्रदान किया और उसे धन्य धन्य कर दिया।

ऐसे परमोत्कृष्ट भक्तों के लिये कहा गया है कि उन मिलनातुर, विरहातुर, परमात्माभिलाषियों के लिये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की किसी प्रकार की दूरी और बाधाएँ उनके मार्ग को बाधित नहीं करतीं।

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो,
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म,
कृष्ण प्रणामी न पुनर्भवाय।।

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण को अगर एक बार प्रणाम कर लिया जाय तो वह दस अश्वमेघयज्ञ सम्पन्न करने के समान है। दस अश्वमेघयज्ञ करने वाले का पुनर्जन्म होता है, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण का नाम लेने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता।

श्रीमन्महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से कहा— यार चित्ते कृष्णप्रेमा करये उदय। तार वाक्य क्रिया मुद्रा विज्ञे ना बुझय।। (श्रीचै.च.(मध्य)23/21)

श्रीरूप गोस्वामीपाद ने इस प्रसंशा को इस प्रकार व्यक्त किया है— धन्यस्यायं नवः प्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि। अर्न्तवाणिभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठु सुदुर्गमा।। (भक्ति रसामृत सिन्धु १/४/८)

जिनके ह्रदय में इस नवीन प्रेम का उदय होता है, वे धन्य हैं। उनके वाक्यों एवं क्रियाओं को शास्त्रवेत्ता भी नहीं समझ सकते।

वस्तुतः गोपियाँ भगवत्प्रेम की पराकाष्ठा हैं। गोपियों के मन, वाणी और शरीर श्रीकृष्ण में ही तल्लीन थे। जब भगवान् के दूत बनकर उद्धव व्रज में आये तब वे उनसे इस प्रकार कहते–कहते भूल ही गयीं कि कौन–सी बात किस तरह किसके सामने कहनी चाहिये।

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोर बालययोः।। (श्रीमद्भा. १०/४७/१०)

श्रीकृष्ण ने बचपन से किशोरावस्थातक जितनी भी लीलाएँ की थीं, उन सबकी याद कर–करके गोपियाँ उनका गान करती। वे आत्मविस्मृत होकर स्त्रीसुलभ लज्जा को भूलकर रोने लगती।

राजा निमि के प्रश्न के उत्तर में नौ योगीश्वरों में से एक कवि ने कहा— संसार में भगवान् के जन्म और लीला की बहुत–सी मंगलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं, उनका श्रवण और प्रभु के गुणों और लीलाओं का स्मरण करने वाले भगवान् के बहुत नाम भी प्रसिद्ध हैं, उनका कीर्तन करना चाहिये। जो व्यक्ति ऐसा करता है उसके ह्रदय में प्रभु के प्रति

अनुराग एवं प्रेम का अंकुर उग आता है, चित्त द्रवित होकर वह सामान्य से ऊंची स्थिति में उठ जाता है। वह कभी खिल–खिलाकर हंसता है तो कभी फूट–फूटकर रोने लगता है। कभी प्रभु के आगे नृत्य भी करता है।

एवं व्रतः स्वप्रियनाम कीर्त्या, जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय– त्युन्मादवन्नृत्यति लोक ब्राह्यः।। (श्रीमद्भा. ११/२/४०)

विरह की व्याकुलता में भक्त अनायास कह उठता है–

कदाहं यमुनातीरे नामानि तव कीर्तयन्।
उद्वाष्पः पुण्डरीकाक्ष रचयिष्यामि ताण्डवम्।। (भक्ति रसमृत सिन्धु (१/२/३०)

हे कमलनयन! कब मैं यमुनातीर पर अश्रुपूर्ण नेत्रों से आपकी नामावली का कीर्तन करते करते नृत्य आरम्भ करूँगा?

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–

गीत्वा च मम नामानि नर्तयेन्मम सन्निधौ।
रदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन।।
गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम सन्निधौ।
तेषामहं परिक्रीतो नान्यक्रीतो जनार्दनः।। (श्री हरि भक्ति विलास ११/२३१)

हे अर्जुन! जो मेरा नाम संकीर्तन करते हुए मेरे सामने नृत्य करते हैं, तुमसे सत्य कहता हूँ– मैं उनके हाथों बिक जाता हूँ। जो मेरा नाम संकीर्तन करते हुए मेरे सामने रोदन करते हैं, मैं जनार्दन सर्वतोभाव से उनके वशीभूत हो जाता हूँ और किसी के वशीभूत नहीं होता।

एक समय अष्टछाप के सखा (कवि) परमानन्ददास ने श्रीमद् आचार्यचरण श्रीवल्लभाधीश को एक विरह का पद गाकर सुनाया– ''हरि तेरी लीला की सुधि आवे।'' यह सुनकर आपश्री को तीन दिवस रात्री ऐसा विरह ज्वर हुआ कि सेवक गण आपश्री की यह दशा देखकर वे भी आपके सन्मुख बैठे रहे, जब आपश्री का विरह ज्वर उतरा तब आपके सेवकों को धीरज हुआ।

गोपीजन विरह में ही रही जब प्रभु गोकुल से मथुरा पधारे। जीवन विरह में ही जीती रहीं प्रभु को कुछ भी नहीं कहा, हमारा प्रीतम जहाँ रहे उसी में गोपियों ने सुख माना। ''गोपी प्रेम की ध्वजा''–परमानंददास

प्रीत कर काहू सुख न लयौ।।
अलीसुत प्रीत करी जल सुत सों सम्पुट मांझ रह्यो।।१।।
पतंग प्रीत करी दीपक सो अपने देह दह्यो।।
कुरंग प्रीत करी नाद सो सन्मुख बाण सह्यो।।२।।
गोपिन प्रीत करी नंद नंदन सो चलन न कछू कह्यो।।
''सूर–स्याम यह प्रीत कठिन है, नैनन नीर बह्यो।।३।।

जिनने भी सांसारिक प्रीती करी उनने जीवन में सब कुछ गंवाया, खोया एवं गोपीजनों ने प्रीती कर वे अमर हो गई, कृष्ण भी उन्हें याद कर रोने लगते थे। उद्यौ मोहे व्रज विसरत नाहीं। गोपी कृष्ण प्रीती सदा अमर रहेगी। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

भक्त की भावना का महत्त्व

—डॉ. रचना तैलंग

भक्ति में प्रभु के स्वरूप से अधिक भक्त की भावना का महत्व होता है। अतः जो कुछ सम्मुख दृष्टव्य है उसमें भक्त की कल्पना व भावना का समावेश उसे अपने हृदयस्थ भावों की गहराई तक ले जाने में सक्षम होता है।

भक्त की भावना को साकार रूप देते हैं चित्रकार या प्रभु के विग्रह का शृंगार करने वाले सेवाभावी।

प्रस्तुत चित्र में महाप्रभुजी की छवि में कई स्वरूपों का दर्शन एक साथ करने की भक्त की कल्पना साकार हो उठी है। मुकुट व मोरपंखी शृंगार से सर्वप्रथम श्रीकृष्ण नटनागर स्वरूप का आभास होता है। नेत्र नासिका व होठों से श्रीकृष्ण की अभिन्न सखी राधा के स्वरूप का दर्शन होता है। हारादि शृंगार एवं वाम हस्त में कमलदल से श्रीनाथजी की छवि का स्मरण हो आता है। धोती उपरना व सादगी पूर्ण वेष में पुष्टिमार्ग के प्रणेता श्रीमहाप्रभुजी की छवि प्रत्यक्ष प्रकट है तथा हाथ में धारित गौमुखी से जमुना का आभास होता है। इस प्रकार चित्रकार ने एक ही छवि में श्रीकृष्ण, राधा, श्रीनाथजी, जमुनाजी एवं महाप्रभुजी का एक साथ समावेश करने का प्रयास किया है जो यह संदेश देता है कि पुष्टिमार्ग में ये सभी सेव्य स्वरूप एक ही हैं।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

''हरिमूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादपि तत्र हि।
दर्शन स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा।।१७।।

–श्यामसुंदर गिरनारा

मानसिक संकल्प से भी भगवन्मूर्ति का सदा ध्यान करते रहना चाहिये। उस मूर्ति में दर्शन, स्पर्श, कृति और गति आदि की सदा स्पष्ट भावना करनी चाहिय। (निरोध लक्षण)

भगवान् में हमारा स्वयं का स्थापन हो इस दिशा के प्रयास में यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण वस्तुओं का सर्वव्यापी जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ संबंध जोड़ दिया जाय। 'कृष्णस्य सर्ववस्तूनि, भूम्न इशस्य योजयेत्।' हम जब अपने आपका निरीक्षण करते हैं तब एक महत्वपूर्ण बात की ओर हमारा ध्यान जाता है कि हमारे मन में मानस पटल पर निरंतर दृश्य आते रहते हैं। हम शांति से बैठे हों, कुछ भी नहीं सोच रहे हों और यकायक मन में कोई स्मृति दृश्य उभरता है; हमारे चित्त में उसके प्रति खिंचाव सा अनुभव होता है और विचार प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। इस प्रकार से दृश्य आते रहते हैं और मन में भटकन बनी रहती है, जीव लौकिक चिन्तन में व्यस्त रहता है। हमारी जो शक्ति, समय, ऊर्जा भगवान् में खर्च होनी चाहिये वह उस संसार के नाम पर बर्बाद हो जाती है, बदले में जिससे हमारा कहीं, कोई भला नहीं होता। इसीलिये महाप्रभुजी एक मनोवैज्ञानिक उपाय बताते हैं। यह हर चीज का संबंध प्रभु से जोड़ने के सिलसिले में ही है। इसमें परिवर्तन यह करना होगा कि बिना हमारे जाने जो हमारे मन में स्मृति दृश्य आ आकर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं तथा उसके चिन्तन में हमें व्यस्त कर देते हैं उसके बजाय मन में ठाकुरजी को विराजमान करना होगा। हम अपने मानस पटल पर ठाकुरजी के स्वरूप का, विट्ठलनाथजी, गोकुलनाथजी, गोकुलचन्द्रमाजी या मदनमोहनजी के स्वरूप को विराजित कर निहारना आरंभ करें या जिन श्रीनाथजी के स्वरूप का नित्य दर्शन करते हैं ध्यान में उनके दर्शन करें। यही महाप्रभुजी बता रहे हैं ''मानसिक संकल्प से (भी) भगवन्मूर्ति का सदा ध्यान करते रहना चाहिये।'' यह कोशिश स्वतः आने वाले मानसिक दृश्यों से सर्वथा भिन्न है, इसमें हमें थोड़ी ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। मन में स्मृति दृश्यों के स्थान पर आपको जो भगवद् स्वरूप प्रिय हो उसे निहारना शुरु करें। अब बात यहीं तक सीमित नहीं है। वल्लभ आगे कहते हैं– ''उस मूर्ति में दर्शन, स्पर्श, कृति और गति आदि की सदा स्पष्ट भावना करनी चाहिये।'' मानलें आप अपने मन में श्रीनाथजी के दर्शन कर रहे हैं तो केवल दर्शन ही नहीं करें, उनका स्पर्श भी करें। मानसिक रूप से उनकी सेवा करते समय स्पर्श तो होता ही है, चरण स्पर्श करें अथवा मस्तक ही उनके चरणों में रख देवें, प्रभु मैं आपका

'दासोऽम् कृष्ण तवास्मि।' महाप्रभुजी ने कहा है– स्पष्ट भावना करनी चाहिये, इसका अर्थ अनुभव पूर्वक कृति करनी चाहिये। आप अपने मानस पटल पर विराजमान प्रभु के समक्ष बैठकर कीर्तन भी कर सकते हैं। मानसिक नंदालय में अपने आपको प्रवेश देने से बाहरी जगत् से सम्पर्क टूटने लगता है। षोडश ग्रंथ के निरोध लक्षण का मूल उद्देश्य यही हैं मन बुद्धि चित्त अहंकार अर्थात् अतःकरण पूर्वक जीव भगवान् में निमग्न हो जाय, तल्लीन हो जाय, खो–डूब जाय। हम अभी संसार में खोये हुए हैं, अपने को संसार से लौटाकर भगवान में लगाना है, भगवान में खोना है इस प्रयास में मानसिक संकल्प से भगवद् स्वरूप का ध्यान काफी सहायक हैं। संकल्प विकल्प में बहुत समय नष्ट होता है क्योंकि मन, माया का शस्त्र है– अनगिनत विचार, अनगिनत मानसिक दृश्य जिनके चिन्तन में जीव इतना आसक्त हो जाता है कि भगवान् को भूल ही जाता है। अतः संत ब्रजदेवी कहते थे– मन जहां भी जाएं वहां ठाकुरजी को उपस्थित देखना चाहियें। अगर मन बाजार जाए तो वहां ठाकुरजी को देखें, ऑफिस में जाए तो वहां ठाकुरजी को देखें। अगर किसी दुष्ट पुरूष की तरफ ध्यान जाए तो वहां भी ठाकुरजी को देखें। इससे उस पुरूष को दोष चिंतन तो होगा पर साथ ही ठाकुरजी की उपस्थित देख कर मन उस पुरूष के दोष चिंतन में निमग्न नहीं हो सकेगा। हमारे प्रत्येक जीवन व्यवहार में ठाकुरजी को सम्मिलित करना इसलिये महत्त्वपूर्ण है ताकि मन पूरा का पूरा संसार में डूब नहीं जाय। इसमें संकल्पों की भूमिका सबसे ज्यादा सक्रिय होती है। अतः वल्लभ की आज्ञा है– ''मानसिक संकल्प से (भी) भगवन्मूर्ति का सदाध्यान करते रहना चाहिये। उस मूर्ति में दर्शन, स्पर्श, कृति और गति आदि की सदा स्पष्ट भावना करनी चाहिये।'' यहां स्पष्ट भावना शब्दों का अर्थ जानना बड़ा महत्त्व रखता है। हम यह भावना कर सकते हैं कि हमारे मानस पटल पर विराजित ठाकुरजी के स्वरूप को पुष्टाने हेतु साक्षात् महाप्रभुजी स्वयं पधारे हैं। तत्पश्चात् ठाकुरजी स्वयं साक्षात् विराज रहे हैं, यह भावना करना आसान हो जाता है। भावना को कदाचित् कोई काल्पनिक समझे परन्तु व्यवहार में भी हम जो चिंतन करते हैं वह भी एक प्रकार की भावना ही है परन्तु उसके जब परिणाम आते हैं तब उसकी शक्ति का पता चलता है अतः भगवान् की भावना करना कितना महत्वपूर्ण है यह जानने जैसा है। भागवत में भी कहा है– संकल्प विकल्प करने वाले मन को बांध ले तथा स्वयं भगवद् भजन में प्रवृत्त हो जाय। मन में तो संकल्प विकल्प चलते ही हैं परंतु जब हम स्वयं उसमें प्रवृत्त हो जाते हैं तब बड़ी हानि होती है इसलिये हमें संकल्प करने के बजाय वल्लभ आज्ञानुसार 'मानसिक संकल्प से भगवन्मूर्ति का सदा ध्यान करते रहना चाहिये।' यह संकल्प हमें ही करना होगा, यह संकल्प स्वतः नहीं होगा। स्वतः जो संकल्प उठते रहते हैं वे लौकिक ही होते हैं, प्रायः

अलौकिक संकल्प तो तभी उठते हैं जब सम्पूर्ण जीवन भगवन्मय हो जाय। लौकिक भावों, विचारों का सर्वथा निवारण हो जाय। महाप्रभुजी ने इस 'निषेध लक्षण' ग्रंथ की रचना इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर की है। वैष्णव को अपने आनन्द के स्त्रोत का ज्ञान होना चाहिये अतः वल्लभ कहते हैं– "भगवान् ने जिन्हें छोड़ दिया है, वे भवसागर में डूबे हुए हैं और जिनको उन्होंने अपने में निरूद्ध कर लिया है, वे ही यहां निरंतर आनन्द मग्न रहते हैं।" "सदानन्द स्वरूप प्रभु की आराधना में तत्पर भक्तों को चाहिये कि वे अपनी चित्त–वृत्तियों के निरोध पूर्वक सदा सबकी आसक्ति छोड़कर प्रभु के गुणों का निरंतर गान करें इससे सच्चिदानंद स्वरूपता की प्राप्ति होती है। "अगर बाहर से न छोड़ सकें तो कम से कम मन से तो प्रभु के अलावा सब छोड़ देना चाहिये।"

जीव की राग में तो आसक्ति होती है, द्वेष में भी आसक्ति होती है, मित्र में तो आसक्ति होती है, शत्रु में भी आसक्ति होती है, सुख में तो आसक्ति होती है, दुख में भी आसक्ति होती है। जीव को जिन भगवान् मेंे आसक्ति होनी चाहिये, जिनका स्मरण करना चाहिये उनके सप्रयास स्मरण में प्रवृत्ति नहीं होती; तल्लीनता कहां से हो; और जिस दुख में आसक्ति नहीं होनी चाहिये, जिस दुख का स्मरण भी नहीं होना चाहिये उस दुख का निरंतर स्मरण होता है बल्कि उसमें तल्लीनता भी हो जाती है। यही जीव का दुर्भाग्य है। भगवान् स्वयं हमारा निरोध अपने आपमें कर ले तब तो आनन्द ही आनन्द है परंतु जहां वृत्ति निरोध पूर्वक, सब आसक्ति छोड़कर स्वयं प्रभु गुणगान में प्रवृत्त होने की बात आती है वहां चित्त के मोह में डूबे होने की महा समस्या का अनुभव साधन दशा के वैष्णवों को होता ही है। इसी सिलसिले में अभ्यास दिया है– "मानसिक संकल्प से भगवन्मूर्ति का सदा ध्यान करते रहना चाहिये। उस मूर्ति में दर्शन, स्पर्श, कृति और गति आदि की सदा स्पष्ट भावना करनी चाहिये।" हमारे ध्यान में हमारे सेव्य स्वरूप स्वयं अरोग रहे हैं, आधा खा रहे हैं, आधा ढोल रहे हैं या इधर उधर भाग रहे हैं। हाथ में माखन है, थोड़ा मुंह पर लगा है। अगर कोई सखा आ गया तो उसे अधरामृत दे रहे हैं। आदि लीलाओं की स्पष्ट भावना करनी चाहिये मानो मानसिक धरातल पर यह सचमुच घट रहा है। हृदय में भगवान् प्रत्यक्ष विराजमान हैं ही परंतु मन मस्तिष्क संसार का संग्रहालय बने रहते हैं वहां संकल्पों के माध्यम से भगवत्स्वरूप का ध्यान करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे मन मस्तिष्क में जहां शांति मिलती है, वहां भगवद् विमुख करने वाले लौकिक चिन्तन से भी छुटकारा मिलता है अतः वैष्णव को चाहिये कि वह स्वयं लौकिक चिन्तन में प्रवृत्त न हो, न उसके औचित्य अथवा अनौचित्य का समर्थन या विरोध करे क्योंकि अनौचित्य का चिन्तन भी उतना ही बाधक है। यदि वैष्णव सम्पूर्ण भगवन्मय जीवन जीना चाहता है तो उसे सांसारिक अच्छाई बुराई के पचड़े में

पड़ना ही नहीं चाहिये। भगवान का खेल विचित्र है वे अच्छाई का अभिमान करने वाले को डुबा देते हैं एवं बुराई के कारण दीनता अनुभव करने वाले भक्त पर भी अनुग्रह करके उसे तार देते हैं। यह समस्या अत्यधिक संस्कार बद्धता के कारण आती है अन्यथा साधन दशा में यदि भक्त निरंतर भगवान में ही टिका रहे तो तमाम बहिर्मुखी एवं व्यर्थ संकल्प विकल्प उठते और नष्ट होते रहते हैं। कहा भी है जो टिका रहता है वही जीतता है। संकल्पों की बाधा चाहे जितनी प्रबल हो, उनके कारण चाहे जितने जन्म नष्ट हो जाए फिर भी जीव मरता नहीं, अंत में भगवत्प्राप्ति तो शेष रहती ही है। अतः निरर्थक संकल्पों से विचलित होने या धैर्य त्यागने के बजाय दृढ़ता बनाये रखना उचित है। इसके लिये उसे स्वयं मन में भटकाने वाले विचारों के साथ भटकने के बजाय विचार को, संकल्प को नयी और सही दिशा देनी चाहिये। इसीलिये कहा है– ''हरिर्मूर्तिः सदाध्येया संकल्पादपि तत्र हि। दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा।।'

मानसिक संकल्प से ठाकुरजी के समान वल्लभ स्वरूप का भी ध्यान किया जा सकता है– ''श्रीवल्लभ मधुराकृति मेरे। सदा वसो मन यह जीवन धन सब हिन सों जु कहत हुं टेरे।। मधुर वचन और नयन मधुर भ्रोंह युग मधुर अलकन की पांत। मधुर माल अह तिलक मधुर अति मधुर नासिका कही न जात।। अधर मधुर रसरूप मधुर छवि मधुरं मधुर दोऊ ललित कपोल। श्रवण मधुर कुंडल की आलकन मधुर मकर दोऊ करत कलोल।। मधुर कटाक्ष कृपा रस पूरण मधुर मनोहर वचन विलास। मधुर उगार वेत दासन कों मधुर विराजत मुख मृदुहास।। मधुर कंठ आभूषण भूषित मधुर उर स्थल रूप समाज। अति विशाल जानु अवलंबित मधुर बाह परित्यण काज।। मधुर उदर कटि मधुर जानु युग मधुर चरण गति सब सुखरास। मधुर चरण की रेणु निरंतर जनम जनम मांगत हरिदास।। ऐसे वल्लभ प्रभु को छोड़ संसार के प्रति दोष दृष्टि का संकल्प व्यर्थ है जो हमारी खुद की स्वाधीनता एवं प्रसन्नता को नष्ट करता है।

साधन दशा में भक्त को संकल्प के विषय में यह योजना अवश्य बनानी चाहिये ताकि लौकिक चिन्तन में एक क्षण भी नष्ट न हो। उक्त संकल्पों के आवरण से सावधान रहना अत्यंत कठिन है फिर भी प्रयत्न नहीं त्यागना चाहिये।

सात्विक–राजसी तामसी गुणों से प्रेरित चिन्तन ही जीव को भवसागर में डुबाता है केवल भगवच्चिन्तन ही जीव का उद्धार कर सकता है। सात्त्विक गुण में भी सात्त्विक अहं होता है, जो निर्गुण नहीं है, निर्गुण भक्ति नहीं है।

दुख कष्ट इसलिये नहीं आते ताकि हम उन्हीं का लौकिक चिन्तन करते रहे बल्कि दुख कष्ट इसलिये आते है ताकि हमें जानकारी मिले कि हमारे अखंड भगवच्चिन्तन में कहां कहां बाधा है, इस आज्ञा पालन में सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

अपनत्व के भाव से प्रभु प्राप्ति

—प्रो. श्रीललितशंकर शर्मा (चिंतनखण्ड से साभार)

संसार के प्रति अपनत्व का भाव परिणाम में चाहे शोक, क्लेश एवं सन्ताप दायक हो किन्तु प्रभु के प्रति अपनत्व का भाव प्रभु प्राप्ति में सहायक सिद्ध होता है। सम्पूर्ण संसार को मनुष्य ने निजत्व एवं परत्व की परिधि में विभाजित कर रखा है और वह सदैव निजत्व का पोषण कर अपने क्षुद्र अहं का पोषण करता रहता है। पारमार्थिक दृष्टि से निजत्व एवं परत्व में तात्विक भेद नहीं है। किन्तु इनकी अनुभूतियाँ जीवन को पूर्णता की ओर अग्रसर करने में सहायक होती हैं। शैशवावस्था से ही मनुष्य में उत्तरोत्तर निजत्व एवं परत्व की अनुभूतियों का विकास होता रहता है। प्रत्येक संवेदना निजत्व एवं परत्व की अनुभूति के आधार पर ही व्यक्त होती है। मनुष्य जहां निजत्व अनुभव करता है वहां परम उदार हो जाता है।

निजत्व का आधार स्नेह होता है। सांसारिक सम्बन्धों के मूल में यही स्नेह, मोह एवं ममता के रूप में स्थित रह कर निजत्व की अनुभूति करता है। निजत्व का अनुभव ही मनुष्य को त्याग के लिए प्रेरित करता है। मनुष्य अपने निजत्व की परिधि में तन, मन, एवं धन आदि सब कुछ लगाकर ही सुख का अनुभव करता है। इस मनोवैज्ञानिक सत्य को ध्यान में रखते हुए भक्तिमार्ग में अपने आराध्य को निजत्व की परिधि में लाकर सेवा समर्पित की जाती है, सर्वस्व न्यौछावर किया जाता है। सद्गुरु को भी निजत्व की परिधि में लेकर सम्पूर्ण भाव से उनकी सेवा सुश्रुषा करते हुए उनकी सहज प्रसन्नता एवं कृपा प्राप्त की जा सकती है। अपने इष्ट देव एवं सद्गुरु के प्रति अपनत्व का भाव सेवा एवं समर्पण के लिए मार्ग प्रशस्त कर देता है।

साधारण संसारी मनुष्य प्रायः अपने देह सम्बन्धियों को ही अपनत्व प्रदान कर पाते हैं। किन्तु परमार्थ पथ के पथिक ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का उदार भाव धारण कर सम्पूर्ण संसार को अपने निजत्व की परिधि में लेकर अपने सद्भाव, संकल्प, व्यवहार एवं कर्तव्य पालन द्वारा समस्त जगत का कल्याण करते हैं, यह भी एक उल्लेखनीय रहस्य है कि इष्टदेव एवं सद्गुरु भी उनके प्रति अपनत्व की भावना रखने वाले स्नेही जन से ही सेवा स्वीकार करते हैं।

वस्तुतः पुष्टिवर्द्धन का भगवद् धर्म भी निजत्व पर ही आधारित है। प्रेम स्वरूप परमात्मा अपने प्रिय भक्त को निज की परिधि में रख कर ही उसे पुष्टि प्रदान करते हैं। वस्तुतः अपनत्व स्थापित हो जाने पर ही पुष्टि का अनुभव होता है। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

भक्त कवि सूरदास

पं. श्रीविष्णुदत्त पुरोहित

ब्रजभाषा साहित्य के जनक एवं हिन्दी भाषा के भक्तिकाल के महाकवि के नाम से विख्यात कवि कुल शिरोमणि जो पुष्टिमार्ग में सूर के नाम से कीर्तन साहित्य में प्रसिद्ध हुए है उनके जीवन में कई अलौकिकताएं दृष्टिगोचर हुई है उनके जीवन का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत है–

सूरदासजी का जन्म दिल्ली के पास सिही नामक गांव में विक्रम संवत् १५३५ के वैशाख शुक्ला पंचमी को हुआ। ये एक अत्यन्त उद्दात् किन्तु निर्धन ब्राह्मण के चोथे पुत्र थे एवं जन्म से ही अन्धे थे। कुटुम्ब में निर्धनता एवं उनके अन्धे होने से पूरा परिवार चिंतित था। इसी से परिवार में तिरस्कृत एवं भाररूप जीवन हो गया था एवं जब संसार से तिरस्कृत जीव का सम्बल भगवान ही होते है ऐसे ही दीनबन्धु ने सूरदासजी के जीवन को अपनी शरण में लेकर अनायास ही विलक्षण प्रतिभा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया–

सूरदासजी की दिव्य दृष्टि :– सूरदासजी के परिवार के यजमान के यहां ब्राह्मण भोज का आयोजन हुआ। परिवार को धनिक यजमान द्वारा दो स्वर्ण मुद्राए दक्षिणा में प्राप्त हुई। दक्षिणा की प्राप्ति से पूरा परिवार अत्यन्त प्रसन्न था कि कम से कम दो तीन वर्ष के भोजन वस्त्र आदि की व्यवस्था हो गई हैं, किन्तु खंडहर जैसे मकान में इन मुद्राओं की सुरक्षा होना दुष्कर प्रतीत हुआ। मुद्राओं को फटे वस्त्रों में लपेटकर दीवार के कोठर में रख दी गई। प्रातः काल मुद्राए जहां रखी थी वहां से न मिलने पर पूरे घर की तलाशी ली गई किन्तु मुद्राए नहीं मिली। सभी का मन खिन्न था किन्तु सूरदास को तनिक भी चिन्ता नहीं हुई। उन्होंने पिता से प्रभु स्मरण कर चिन्ता त्यागने का उपदेश दिया। इस उपदेश से पूरा घर सूरदासजी पर नाराज होकर भला बुरा कहने लगा तब सूरदासजी ने कहा कि यदि आप मुझे इस घर से जाने की स्वीकृति देते हो तो में स्वर्ण मुद्राए बता सकता हूँ। सभी को इस जन्मान्ध बालक के कथन पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने स्वीकार कर पूछा तब सूरदासजी ने चूहों द्वारा स्वर्ण मुद्रा की पोटली मकान के

छप्पर में रख दी जाने की सही स्थान की सूचना दी। स्वर्ण मुद्राए वहीं पर मिल गई। सभी प्रसन्न हो गए।

इसी समय सूरदासजी घर का त्याग कर ब्रज की ओर चल दिये। रास्ते में एक गांव के समीप वृक्ष के नीचे बैठ कर हरिस्मरण करने लगे। कहते है उस समय स्वयं हरि ने सूरदासजी की सम्भाल की।

देवयोग से उसी समय एक जमींदार की गायें भटक कर खो गई। ग्वाले व जमीदार उन्हें ढूंढ रहे थे। बातो से सूरदासजी ने सारा वृतान्त जान कर जमीदार को बताया कि गाये अधिक दूर नहीं गई है। दूसरे गांव के जमीदार के व्यक्ति रात्रि में आपकी गाये ले गये है ये गाये उसी जमीदार के घर के अन्दर भाग में अश्वशाला में बंधी हुई है।

जमीदार ने उसी निर्दिष्ट स्थान पर शौध करने पर गाये वहां मिल गई। इससे प्रसन्न होकर जमीदार ने सूरदासजी के रहने व खाने की व्यवस्था करवा दी। गांव गांव सूरदासजी की दिव्य दृष्टि की बात फैलती गई एवं अनेक स्थानों से व्यक्ति लाभ लेने लगे। किन्तु सूरदासजी का एकान्त भंग होने लगा। तब उन्होंने हृदय से भगवान की विनती कर इससे छूटने का निवेदन किया।

इस प्रार्थना से प्रभु ने प्रसन्न होकर श्रीवल्लभाचार्यजी के रूप में ब्रजयात्रा का आयोजन किया एवं यात्रा के मध्य गौघाट पर मुकाम किया। श्रीसूरदासजी ने भी आचार्य चरण के दर्शनों से प्रभावित होकर सांष्टांग प्रणाम किया। आचार्य चरण ने उन्हें कीर्तन सुनाने का आदेश दिया।

सूरदासजी ने उस प्रसंग पर दीनता दर्शाने वाला कीर्तन सुनाया तब आचार्य चरण ने कहा की सूर (वीर) होते हुए ऐसे दीनतापूर्ण क्यों गाते हो। प्रभु के यश का वर्णन करो।

आदेश पाकर सूरदासजी गद् गद् हो गये एवं बोले कि मैं तो महा पतितजीव हूँ किन्तु आपकी आज्ञा से गा रहा हूँ। पश्चात सूरदासजी को स्नान कराने के पश्चात् ब्रह्मसंबन्ध का मंत्र दिया। तब से सूर हृदय में प्रभु की प्रेम लक्षणा भक्ति के बीज स्थापित हुए। तब से लीला का स्फुरण होते श्रीजी बावा के मन्दिर में अष्ट सखा रूप से कीर्तन करने लगे।

मानस रचनाकार तुलसीदासजी अपने छोटेभाई अष्टसखा कीर्तनकार श्रीनन्ददासजी से मिलने ब्रज में पधारें तब वे सूरदासजी से भी मिलने गये। सूरदासजी दृष्टिहीन होते

हुए भी दूर से तुलसीदास को पुकार कर कहा आईये तुलसीदासजी। पश्चात सत्संग में सूरदासजी ने श्रीतुलसी को बहुत प्रभावित किया एवं राम और कृष्ण में 'अभेद' समझाया एवं नन्ददास के साथ उन्हें श्रीनाथजी के दर्शन करने को कहा। वे दर्शन करने गये वहां श्री श्रीजी बावा ने राम के रूप में दर्शन दिये। इसी से प्रभावित हो तुलसीदासजी ने राम कृष्ण की अनेक बाललीला के पद बनाए एवं हिन्दी भाषा में कृष्ण गीतावली की रचना की।

इसी प्रकार सूरदासजी से अनेको सन्तों कवियों ने गौघाट पर सत्संग किया। इसी क्रम में एक बार कबीर भी वहा पधारे एवं ब्रज में जाने की इच्छा व्यक्त की तब सूरदासजी ने उन्हें ब्रज में न जाने की सलाह दी। और कहा कि तुम निराकार निरंजन ब्रह्म के उपासक हो लेकिन ब्रज में सगुण लीलामय परब्रह्म श्रीकृष्ण विराजते है। इसके पत्ते पत्ते में चतुर्भुज प्रभु है। यहां शुष्क निराकार वादी ब्रज भूमि की निलीमा का ह्रास कर वृक्षों को सुखा देगें। कबीरजी को परीक्षा के तौर पर यमुना तट के एक वृक्ष के नीचे बैठकर निर्गुणी भजन करने की आज्ञा सूरदासजी ने दी तदनुसार कबीरजी ने वहां निराकार ब्रह्म का एक भजन पद गाया। देखते देखते वृक्ष के पत्ते सूख गये तब कबीरजी ने सूरदासजी की बात स्वीकार की।

पश्चात कबीरजी ने उसी वृक्ष के नीचे बैठकर कृष्ण की रसात्मक लीला का वर्णन कर वृक्ष को हरा किया एवं इस प्रयोग से स्वयं कबीरजी भी आश्चर्य चकित हो गये एवं ब्रज के बजाय वे काशी की ओर प्रस्थान कर गये।

एक दिन सूरदासजी को स्फुरणा हुई कि अब उन्हें श्रीहरि की नित्य लीला में पहुंचने का समय आ गया है। इसी से प्रेरित होकर वे पारसोली चन्द्र सरोवर के तट पर चले गये। वहां से श्रीजी मन्दिर की ध्वजा को दण्डवत् किया। उनको विचार आया कि ऐसे समय में श्रीगुरूदेव का सानिध्य प्राप्त हो तो उत्तम रहेगा। इधर गुसांईजी ने सूरदासजी को कीर्तन में अनुपस्थित पाया। वे तुरन्त अन्य वैष्णवों के साथ पारसोली गये एवं अन्तर्यामी गुसांईजी ने उनके अन्तिम समय का अनुमान कर अन्य वैष्णवों को बताया कि इस वैष्णव सम्प्रदाय का एक जहाज जा रहा है। इसमें से जो माल लेना चाहे ले लेना। अनेक वैष्णव पारसोली में सूरदासजी को जय श्रीकृष्ण करने जाने लगे। इससे सूरदासजी अन्तिम क्षणों में गद्गद् होकर प्रभु की नित्य लीला में पहुंच गये।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्गीय प्रधान–पीठ (घर) में ग्रहण आचार–विचार

–उपाध्याय ब्रजभूषण भट्ट, प्रधान उपाध्याय, नाथद्वारा

वल्लभ–सम्प्रदाय में पीठों को घर के नाम से सम्बोधित किया जाता है। पुष्टिमार्ग के मन्दिरों में सेवा–पद्धति के अनुरूप एवं आचार–विचार की दृष्टि से विभिन्न ग्रहण आदि पर शुद्धता–पवित्रता को दृष्टिगत रखते शास्त्रोक्त आचार–विचार एवं दान आदि सम्पादित किये जाते हैं। वैसे सभी मन्दिरों में ग्रहण–पर्व पर आचार–विचार एवं दानादि में साम्यता होती हैं, फिर भी प्रधान–पीठ (घर) नाथद्वारा में पूर्ण शास्त्रोक्त निर्देशों का अनुपालन अधिक दृष्टिगत होता है। अन्य घरों में आद्योपान्त अनुपालन कम नजर आता है।

निर्णय सिन्धु, धर्म सिन्धु आदि ग्रन्थों में उल्लेख है कि जितने समय तक चन्द्र व सूर्य–ग्रहण के दर्शन होते हैं उतने समय तक पुण्यकाल माना जाता है। रविवार को सूर्यग्रहण और सोमवार को चन्द्रग्रहण यदि होता है तो उसे चूड़ामणि योग माना जाता है। इस पर्व पर दानादि का अनन्त फल प्राप्त होता है। स्पर्श के समय स्नान मध्य में मंत्र जप, देव पूजन एवं दानादि और मोक्ष उपरान्त स्नान का विधान है। स्पर्श, मध्य एवं मोक्ष का निर्णय स्थानीय पंचांग, टिप्पणी आदि में प्रायः विस्तार से वर्णित होता है। ग्रहण शुद्धि का वर्णन भी पंचांग, टिप्पणी में उपलब्ध है। ग्रहणकाल में गौ, भूमि, सुवर्ण, धान्य आदि का दान, महाफल प्रदान करने वाला है। ग्रहणकाल में तीर्थ पर मंत्र दीक्षा ग्रहण करने का भी विधान है। मंत्र जप के पुरश्चरण में जप होम, तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मण–भोजन पाँच प्रकार के क्रम है।

ग्रहणकाल में अपने–अपने इष्ट देवता के मंत्र या गायत्री जप अवश्य करें। ग्रहण–काल में शयन, मूत्र–मल त्याग, मैथुन, भोजनादि वर्जित है। ये सब अधोगति, रोग, दरिद्रता प्रदान करने वाले हैं। ग्रहण–काल में पक्वान्न–ग्रहण वेद्य–समय–स्पर्श जन्म राशि पर प्रभाव नक्षत्र, वार, स्नान विधि दान आदि पर अनेक विचार विस्तार से धर्म ग्रन्थों में उल्लखित हैं। उनके अनुसार यथा सम्भव मनुष्य को आचरण करना अभीष्ट है।

श्रीनाथजी मन्दिर एवं नवनीत प्रिय (लालन) मन्दिर नाथद्वारा में प्रायः शास्त्रोक्त निर्देशों का ग्रहण–आचार–विचार व दानादि अक्षरशः अनुपालन किया जाता है। ग्रहण–काल के मध्य में गौ–निष्क्रय, कृषरान्न, डबरा–दान तिल–पात्र दान, सुवर्ण–दान, घृत–कुम्भ दान, प्रत्यक्ष गौ–दान, छाया–दान आदि पूर्ण शास्त्रोक्त विधि से, मन्दिर के प्रधान उपाध्याय एवं पण्ड्या के द्वारा सम्पन्न कराये जाते हैं। श्रीनाथजी एवं नवनीत प्रियजी के मुखिया इन समस्त दानों के संकल्प करते हैं। पूर्ण शास्त्रोक्त विधि से अन्य साहित्य सहित ये दान–संकल्प किये जाते हैं। अन्य मन्दिरों (घरों) में ऐसा प्रचलन प्रायः कम है। अन्य सम्प्रदाय के मन्दिरों में तो वल्लभ सम्प्रदाय की तरह दर्शन–प्रथा भी नहीं है। ग्रहण के दिन, पूर्ण नगर में भक्तिमय कीर्तन मय वातावरण निर्मित हो जाता है। चारों ओर जप, तप, ध्यान, भजन ही दृष्टिगोचर होता है। पूर्ण नगर में भजन मण्डली भजन करती नजर आती हैं। वैष्णव–गण एवं नगर वासी दर्शन, परिक्रमा एवं दानादि के लिए उमड़ पड़ते हैं। सच नाथद्वारा नगर उस दिन गोलोक, तीर्थ–स्थल प्रतीत होता है। जैसा ग्रहण–आचार विचार पुष्टिमार्गीय प्रधान पीठ (घर) नाथद्वारा (राज.) में अनुसरण किया जाता है वैसा अन्यत्र देखने को कम मिलता है। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

नाथद्वारा का अन्नकूट महोत्सव सबसे अनूठा

—नवीन सनाढ्य

वल्लभ सम्प्रदाय की प्रधानपीठ स्थली श्रीनाथजी मंदिर में दीपोत्सव के दूसरे दिन अन्नकूट महोत्सव परंम्परा के साथ हजारों वैष्णवों की साक्षी में धूमधाम से मनाया जाता है।

श्रीजी प्यारे की हवेली में अन्नकूट के दिन रात को निज मंदिर (डोल तिबारी) में ठाकुरजी के सम्मुख डेढ़ सौ मन से अधिक चावल का मिढा (शिखर) बनाया जाता है। इसके साथ विभिन्न प्रकार के मिष्ठान सकड़ी—अनसखड़ी भोग सामग्री पधराई जाती है। श्रीजी प्रभु के अन्नकूट अरोगने के उपरांत मेवाड़ के आदिवासी भील अन्नकूट लूटने की परंपरा का निर्वाह करते हैं। अन्नकूट के दिन मंदिर के आस—पास स्थित बाजारों में गो क्रीड़ा का अलौकिक आयोजन होता है। नाथूवास स्थित गोशाला में आने वाली गायों को ग्वाल बाल कूप्पी से रिझा रिझाकर खिलाते हैं। गो क्रीड़ा के दौरान बाजारों में जन सैलाब उमड़ता है। गो क्रीड़ा के बाद तिलकायत श्रीराकेशजी महाराजश्री के सानिध्य में गोवर्धन पूजा की रस्म निभाई जाती है।

'kqHk eqgwrZ esa curh gS lkexzh %&

अन्नकूट महोत्सव की भोग सामग्री बनाने की सेवा का क्रम भी अपने आप में अनूठा है। श्रीजी प्रभु की रसोई में दशहरा के दिन से अन्नकूट की अनसकड़ी सामग्री बनना शुरू हो जाती है। सकड़ी सामग्री अष्टमी या नवमी के दिन शुभ मुहूर्त में भट्टी पूजन करके बननी शुरू की जाती है। अन्नकूट के चावल व अन्य सामग्री अन्नकूट के दिन सुबह बनाए जाते हैं।

xks ØhM+k ns[kus meM+rs gSa yksx %&

श्रीजी प्रभु की नगरी में दीपोत्सव व अन्नकूट महोत्सव के दिन गो क्रीड़ा का अलौकिक आयोजन होता है। गो क्रीड़ा देखने के लिए इतनी भीड़ उमड़ती है कि बाजार, सड़कें, घरों की छते, छज्जे, खिड़कियां, दुकानें भीड़ से अट जाती है। दोपहर में गो माताओं को सजा कर ग्वाल बाल बाजार में लाते हैं, जहां पर गो क्रीड़ा का अलौकिक आयोजन होता है। गो क्रीड़ा के लिए मंदिर से पायगा तक सड़क पर रेत बिछाई जाती है तथा चयनित स्थानों पर बल्लियां बांधी जाती है। ग्वाल बाल अंगरखी, धोती, टोना, किलंगी, कमर पर पटका बांधे अनूठे लगते हैं। भीड़ पर झपटती—लपटती गायें और इधर उधर भागते—दौड़ते, गिरते—पड़ते ग्वाल, बाल, नगरवासी व वैष्णवजन तथा छतों—मुंडेरो से जैकारे व चिल्लाहट भरती भीड़ का अनूठा नजारा भक्तों को भाव विभोर कर देता है।

ekulh xaxk ds ty ls gksrh gS xkso/kZu iwtk %&

अन्नकूट के दिन शाम को गो क्रीड़ा के बाद गोवर्धन पूजा की रस्म निभाई जाती है। गोवर्धन पूजा के चौक में सूरजपोल की सीढ़ियों पर श्रीलालन प्रभु बिराजते हैं। इनकी साक्षी में गोस्वामी बालक मानसी गंगा के जल दूध, चंदन, कुमकुम आदि सामग्री से गोबर से बने गोवर्धन पर्वत की पूजा कर वस्त्र व माला धराते हैं और भोग अरोगाते हैं। पूजा के बाद नन्दवंशी गाय से गोवर्धन गुंधवाया जाता है।

vUudwV ds n'kZu esa meM+rk gS J)k dk Tokj %&

गोवर्धन पूजा के बाद गायें गोशाला पधार जाती है और श्रीजी प्यारे, श्रीलालन व श्रीविट्ठलेश प्रभु के संग अन्नकूट अरोगते हैं। भोग सरने के बाद कुछ देर के बाद नौ आरती उतारी जाती है। चौथी आरती के बाद भील चावल लूटना प्रारंभ कर देते हैं, पांचवी आरती के बाद श्रीविट्ठलेश प्रभु तथा नवीं आरती के बाद श्रीलालन अपने गृह (मंदिर) में पधार जाते हैं। दर्शन के दौरान भक्तों की अपार जनमैदिनी उमड़ती हैं।

fe<k cukdj ltrk gS vUudwV %&

श्रीजी प्रभु के सम्मुख डोल तिवारी में कलात्मक तरीके से मिढा बनाया जाता है। इस पर चावल का ढेर लगाकर अन्न का कूट (शिखर) बनाकर उसके ऊपर चारों दिशाओं में मिष्ठान के चार गूंजे व बीच में एक चक्र बनाया जाता है। शिखर पर तुलसी माला धराई जाती है और चारों तरफ विविध प्रकार की सामग्री पधराई जाती है।

mRlkg ls ywVrs gSa vUudwV %&

अन्नकूट दर्शन के दौरान मंदिर के बाहर सैकड़ों आदिवासी धोती, बनियान पहने तथा शरीर पर कपड़े की झोली लिए एकत्रित हो जाते हैं। पट खुलते ही आदिवासी हईसा हईसा के स्वर के साथ अन्नकूट लूटने दौड़ पड़ते हैं और चावल के ढेर में कूद पड़ते हैं। करीब घंटे भर तक चलने वाली अन्नकूट की लूट का आनंद लेने के लिए अपार भीड़ उमड़ती हैं।

;s cukrs gSa lkexzh vUudwV dh %&

श्रीजी प्रभु की हवेली में वैसे तो नियमित रूप से सांचिहर, गिरनारा व औदिच्य समाज के लोग भोग सामग्री बनाते हैं, मगर तिलकायतश्री की आज्ञा से अन्नकूट की सामग्री बनाने के लिये भट्ट मेवाड़ा समाज के लोग सेवा भाव से जुटते हैं। प्रतिवर्ष उदयपुर व आसपास के क्षेत्रों से लगभग 50–100 भक्त अन्नकूट की सेवा करने नाथद्वारा आते हैं।

lkrksa Lo:iksa us vjksxk vUudwV %&

नित्य लीलास्थ तिलकायत दाऊजी महाराज की सेवा काल में वल्लभ कुल के सातों स्वरूप नाथद्वारा पधारे थे। तब हुए मनोरथ में सातों स्वरूपों ने श्रीनाथजी के साथ अन्नकूट अरोगा था। यह आयोजन अपने आप में विशेष था। प्राचीन समय में श्रीद्वारिकाधीश नाथद्वारा अन्नकूट अरोगने पधारते थे।

JhukFkth vjksxrs gSa ykyu o foëys'k çHkq ds lax vUudwV %&

वल्लभ सम्प्रदाय में वैसे तो वर्ष पर्यंत कई दिव्य मनोरथ एवं उत्सव आयोजित होते हैं, मगर इनमें अन्नकूट महोत्सव का अपना अलग ही आनन्द व महत्व हैं। इस दिन होने वाली गो क्रीड़ा व गोवर्धन पूजा अन्नकूट महोत्सव को और भी खास बना देती है। दो दिवसीय दीपोत्सव अन्नकूट महोत्सव पर देश भर के कोने–कोने से हजारों भक्तों का सैलाब उमड़ता है। इनकी साक्षी में धूमधाम से मनाया जाता है अन्नकूट महोत्सव। अन्नकूट के दिन श्रीजी प्रभु की केवल मंगला झांकी के दर्शन ही भक्तों को होते है। शेष सभी झांकियों के दर्शन अंदर ही होते हैं। श्रीनाथजी प्रभु अपनी गोद के ठाकुर श्रीनवनीत प्रियजी (श्रीलालन) व द्वितीय पीठ की निधि श्री विट्ठलेश प्रभु के संग ठाट–बाट से अन्नकूट अरोगते हैं। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

गुर्जराणां वर्षारम्भ के साथ उत्सवों की बहार वल्लभ पीठाधीश्वर कृत लालन के उत्सव पर

–डॉ. गगन बिहारी दाधीच

उत्सवों की नगरी के साथ कई आध्यात्मिक भाव रूप जुड़ें रहे हैं। कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष में जहाँ धन तेरस, रूप चौदस, गोवर्धन पूजा व दीपोत्सव का आयोजन होता है वहीं कार्तिक माह के कृष्ण पक्ष में विविध वैष्णव उत्सवों का सुखद संयोग बना। कार्तिक शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन से ही गुर्जराणां 2066 वर्ष का शुभारंभ होता हैं तथा इस भाव रूप में देखें तो इस पक्ष में ग्यारह वैष्णव उत्सव आयोजित हुऐ। यही नहीं, प्राकट्य स्वरूपों को उत्सव–मनोरथों के भावानुरूप ही साज शृंगार धराया गया एवं कीर्तनकार समाज ने भी भांति भांति के उत्सवों से जुड़ी अष्ठछाप पदावलियों का गान कर उत्सव के भावों को द्विगुणीत किया।

प्रतिपदा को जहाँ गुर्जराणां नव वर्ष शुरू हुआ तथा इसी दिन वैष्णव मंदिरों यम द्वितीया का भाव रचा गया। इसी क्रम में शुक्ल पक्ष की सप्तमी को वर्तमान वल्लभ पीठाधीश्वर गो. ति. राकेशजी महाराजकृत लालन के ब्रज विहार का उत्सव भव्य रूप में आयोजित हुआ तथा ठाकुरजी को उत्सव के आभरण धराकर विविध भाव रचे गये।

इस पक्ष का महत्वपूर्ण आयोजन अष्ठमी के दिन गोपाष्टमी के भाव से आयोजित हुआ। वैष्णव स्वरूप इस दिन गोप ग्वाल के साज शृंगार से तो सुशोभित हुऐ ही, भोग सामग्री भी गोपाष्टमी के भाव से ही अरोगाई गई। परम्परानुसार नाथूवास स्थित ठाकुरजी की बड़ी गौशाला में सांडों व बिजारों की रौचक–रौमांचक भिडन्त का आयोजन भी हुआ तथा वैष्णवजनों ने गौ सेवा का आनन्द भी लिया। इससे अगले दिन नवमी के अवसर पर नगर के वैष्णव मंदिरों में अक्षय नवमी का भाव रूप रचा गया तथा परम्परानुसार ठाकुरजी के पुराने प्रवास स्थल घसियार की पावन हवेली में अन्नकूटोत्सव का भाव पूर्ण आयोजन हुआ। इस स्थल पर गौ क्रीडन को देख वैष्णवजन खूब आनन्दित हुएं।

इसके एक दिन बाद ही वैष्णव स्वरूपों को प्रबोधिनी एकादशी के भाव का साज शृंगार धराया गया। सेवानुरूप प्राकट्य स्वरूपों को दूल्हे का शृंगार धराकर चंवरी के चितराम व कशीदेकारी की पिछवई सुसज्जित की गई। कीर्तनकार समाज ने भी नित दूल्हे बने कन्हैया....... पद का गान कर विवाह के भावों को मुखरित किया। सम्प्रदाय में प्रबोधिनी एकादशी के रूप में प्रसिद्ध इस दिन वैष्णव मंदिरों में जागरण के विशेष दर्शनों का आयोजन हुआ। मध्य रात्रि से भौर तक खुले जागरण के दर्शनार्थ नगरवासियों के साथ गुजराती वैष्णवजनों का भारी जमावड़ा रहा। अगले दिन द्वादशी को दो उत्सवों का संयोग बना। वैष्णव स्वरुपों को गुसांईजी के प्रथम लाल श्रीगिरधरजी एवं पंचमलाल श्रीरघुनाथजी के जन्मोत्सव की सेवाएं संयुक्त रुप से धरायी गई तथा हवेली में बधाई की पदावलियाँ गुँजारित हुई। एक दिन बाद ही चतुर्दशी को ठाकुरजी की हवेली में गो. ति. गोविन्दजी महाराज का उत्सव आयोजित हुआ।

कार्तिक पूर्णिमा के दिन ठाकुरजी की नगरी में गो. ति. गोविन्दलालजी महाराजकृत चार स्वरुपोत्सव का अलौकिक आयोजन हुआ। इनके समय में ही धर्म नगरी में चार वैष्णव स्वरुपों का सम्मेलन हुआ तथा वल्लभ सम्प्रदाय की सेवा परम्परा में श्रीवृद्धि हुई। इस दिन ही शृद्धालुओं ने कार्तिक स्नान को पूर्ण किया और वैष्णव मंदिरों में गोप मास की सेवाएं शुरु हुई। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

JhukFkth esa NIiuHkksx

–नवीन सनाढ्य

श्रीजी को सोने व चांदी के पात्रों में सकड़ी व अनसकड़ी सामग्री पधराई

छप्पनभोग के दर्शन के लिए उमड़ी भक्तों की भीड़,

विशाल बावा ने उतारी आरती

श्रीजी प्रभु की हवेली में पोष कृष्ण तेरस सोमवार दि. 14 दिसम्बर 2009 को छप्पनभोग का दिव्य मनोरथ धूमधाम से हुआ। छप्पनभोग मनोरथ मंजूला बेन हरिदासलाल परिवार मुंबई की ओर से आयोजित किया गया।

छप्पनभोग के उपलक्ष्य में श्रीजी प्रभु को अनूठा शृंगार अंगीकार कराया गया। श्रीचरण में नुपुर धराए गए, वहीं श्रीअंग पर केसरी सूथन के संग चाकदार चोली अंगीकार कराई गई। श्रीमस्तक पर टिपारा पाग के संग गोकर्ण व घेरा सुशोभित किया गया। वाम भाग में शीषफूल व सफेद कलंगी धराई गई। श्रीकर्ण में मयूराकृत कुंडल धराए गए, वहीं श्रीअंग पर नवरत्न के आभरण सुशोभित किए गए। मेघश्याम ठाड़े वस्त्र धराकर कंदराखंड में गौमाता वाली पिछवाई सुशोभित की गई।

xksihoYYHk esa vjksxk NIiuHkksx %&

श्रीनंद प्यारे को गोपीवल्लभ में छप्पनभोग अरोगाया गया। निज मंदिर, मणिकोठा, छठी वाला कोठा, डोल तिवारी में मिट्टी, सोने व चांदी के पात्रों में सकड़ी–अनसकड़ी सामग्री पधराई गई। छप्पनभोग अरोगाने के बाद अनसकड़ी सामग्री को कमल चौक स्थित तिवारी में पधराया गया।

n'kZu esa xwats fxjkZt/kj.k ds t;dkjs %&

श्रीजी प्रभु की हवेली में छप्पनभोग की झांकी के दर्शन भक्तों की काफी भीड़ उमड़ी। हवेली व आस–पास के परिसर में गिर्राजधरण की जय, आज के आनंद की जय के जयकारे गूंज उठे। भक्त श्रीजी प्रभु के स्वरूप व छप्पनभोग सामग्री के दर्शन कर अभिभूत हो गए। राजभोग झांकी में तिलकायतश्री के सुपुत्र श्रीविशाल बावा सा. ने श्रीजी प्रभु की आरती उतारी।

>wers&ukprs igqaps euksjFkh %&

छप्पनभोग के मनोरथी परिवार के साथ मुंबई से करीब 400 वैष्णव श्रीजी प्रभु की नगरी में आए।

विशाल बावा का जन्मोत्सव मनाया :–

तिलकायत राकेशजी महाराजश्री के सुपुत्र विशाल बावा सा. का जन्मोत्सव बुधवार को मनाया। श्रीजी प्रभु की हवेली में उत्सव भाव से बाल–स्वरूपों को राग, भोग व शृंगार सेवा के लाड़ लड़ाए गये। कीर्तनकारों द्वारा ठाकुरजी के सम्मुख बधाई पदों का गान गुंजारित हुआ। इस उपलक्ष्य में मोतीमहल पर रोशनी की गई।

बलदेवजी के उत्सव के रूप में पूर्णिमा बुधवार दि. 2 दिसम्बर 2009 को आयोजित छप्पनभोग के अवसर पर भी वैष्णव नगरी में भक्तिभाव का खूब रंग दिखा। ठाकुरजी को इस अवसर पर सुनहरी जरी की सूथन व चाकदार वागा की सेवा धरा कर उत्सव के आभरण व वनमाला सुशोभित हुई। श्याम रंगत की मखमल पर सुनहरी जरी से रूपांकित गोमाताओं की पिछवई सुसज्जित की गई।

पुष्टिसेवा में छप्पनभोग के साथ यह भाव रूप जुड़ा रहा है कि गोवर्धनधारी ने सात दिन तक गोवर्धन को उठाए रखा और ठाकुर सेवा में प्रतिदिन आठ दर्शन होते हैं। इस रूप में 7˜8=56 की संख्या के भावानुरूप ही ठाकुरजी को छप्पनभोग के कई व्यंजन अरोगाए जाते हैं। ठाकुरजी के सम्मुख रतनचौक व डोल तिबारी में जहां विविध व्यंजन वहीं मणिकोठा में महाप्रसाद धराया गया। श्रद्धालुओं ने भी सजेधजे ठाकुरजी के साथ–साथ सुसज्जित छप्पनभोग के व्यंजनों के दर्शन का आनन्द लिया।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

गोपमास में तेरह उत्सवों का संयोग साज–शृंगारिक लीलाओं का भाव

–डॉ. गगन बिहारी दाधीच

वैष्णव सम्प्रदाय की ठाकुर सेवा की परम्परा में मगसर (मार्गशीर्ष) माह की सेवाएं गोपमास एवं व्रतचर्या के भाव से रची जाती हैं। सेवा प्रणाली में पूरा माह राधा–कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं को समर्पित रहता हैं, जिसका मूल भाव ठाकुरजी व स्वामिनीजी के साथ ही यूथ लीलाओं की सखियों के साथ जुड़ा रहा हैं।

गोपमास में व्रतचर्या का साज शृंगार भी अनूठा होता हैं। नित नई लीलाएं रचने वाले गोवर्धनधारी के संग भांति भांति की जो पिछवईयाँ सुसज्जित होती हैं, उनमें भी चीर हरण लीलाओं को विशेष महत्व दिया गया हैं। ठाकुरजी के सम्मुख गुंजारित होने वाली पदावलियों की गेय सेवा का अनुशीलन करें तो इस माह की मंगला झांकियों के समय आरती के बाद खण्डिता भाव के पद तथा शृंगार की झांकी में व्रतचर्या के पदों का गान होता हैं। ये सभी पद चीर लीला के भावों को मुखरित करते हैं। तब तें चीर हरे नन्दननन्दन, चढ़े कदम्ब की डारि........ पद में परमानन्ददास ने एवं हजारों अम्बर दे हौ मुरारी, लेकर चीर कदम्ब जल बैठे, हम जल मांझ उधारी......पद में सूर स्याम ने व्रतचर्या के शृंगारिक भावों को ही मुखरित किया हैं। यही नहीं, सूरदास ने भी 'जलतें निकल तीर सब आवहु, जैसे सविता सों कर जोरे.....पद में चीरहरण की शृंगारिकता को ही प्रमुखता दी हैं।

गोपमास के वैष्णव उत्सवों की बात करें तो कृष्ण पक्ष में जहां दाऊजी महाराजकृत छः स्वरूपों के उत्सव का भाव रचा गया तथा दो दिन बाद ही वैष्णव स्वरुपों को गो. ति. गोविन्दलालजी महाराज के उत्सव की शृंगारिक सेवाएं धरायी गई। अगले दिन को गुसांईजी के दूसरे लाल श्री गोविन्दरायजी महाराज का उत्सव आयोजित हुआ। दो दिन बाद ही उत्पति एकादशी के भाव का साज शृंगार धराया गया। इसी दिन वर्तमान वल्लभ पीठाधीश्वर गो. ति. राकेशजी महाराजकृत लालन के ब्रज से नगर के निज मंदिर में पधराने का उत्सव वल्लभ सम्प्रदाय की ठाकुर सेवा के अनुरूप आयोजित हुआ। श्रीजी बावा ही नहीं, लाडले लालन भी ठाठ–बाट से शृंगारित हुऐ और भोग एवं गेय सेवा के कई भाव रचे गये। अगले दिन त्रयोदशी के अवसर पर धर्मनगरी स्थित वैष्णव मंदिरों में गुसांईजी के सप्तमलाल श्रीघनश्यामजी महाराज का उत्सव पर भी देश भर के वैष्णवों का भारी जमावड़ा रहा।

शुक्लपक्ष में पंचमी दि. 21 नवम्बर 09 के दिन जहाँ मदनमोहनजी का पाटोत्सव आयोजित हुआ तथा वैष्णव स्वरुपों को उत्सव का साज शृंगार धराया गया। इसके दो दिन बाद सप्तमी गुसांईजी के चतुर्थलाल गोकुलनाथजी का जन्मोत्सव आयोजित हुआ तो अगले दिन अष्टमी को गो. ति. गोवर्द्धनेशजी महाराजकृत सात स्वरूपोत्सव का भाव रचा गया। उत्सव के इसी क्रम में नवमीं के दिन वैष्णव मंदिरों में गुसांईजी के उत्सव की बधाई बैठी और ठाकुरजी की हवेली में उत्सव भाव मुखरित हुआ। एक दिन बाद ही प्राकट्य स्वरुपों को मोक्षदा एकादशी की सेवाएं धरा कर विवाह की पदावलियाँ गुंजारित हुई। मार्गशीर्ष पूर्णिमा को गोपमास की सेवाएँ पूर्ण हुई तथा सेवानुरूप ठाकुरजी की हवेली में छप्पनभोग की सेवाएं रची गई। लाडले लालन भी ठाकुरजी के घर पर छप्पनभोग अरोगने पहुंचे तथा वैष्णवों ने भी छप्पनभोग के साथ–साथ शृंगारित ठाकुरजी के दर्शनों का आनन्द लिया। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

परम भगति रस

—राधेश्याम वर्मा ''श्याम''

ब्रज में प्रभु परमानन्द मधुर।
प्रभु लीला ललित ललाम मधुर।।
जहँ कृष्ण भगति ब्रजधाम मधुर।
मोहित गोपी मनकाम मधुर।। ब्रज में........

नित परम भगति रस परम मधुर।
सब राग रहित अनुराग मधुर।।
मन भगति सुधामय मधुर मधुर।
सब धन्य धन्य हैं जन्म मधुर।। ब्रज में........

अति निर्मल यमुना सलिल मधुर।
है चरणकमल रज जहाँ मधुर।।
नित राग नवल प्रिय वेणु मधुर।
कह 'श्याम' कृष्ण की भगति मधुर।। ब्रज में.......

बैंक ऑफ बड़ौदा एवं H.D.F.C. बैंक ने वैष्णवों की सुविधार्थ ऑन लाइन डोनेशन प्रारम्भ किया है। दोनों बैंको के वर्तमान ग्राहक बैंको की साइट पर जाकर श्रीनाथजी हेतु मनोरथ/भेंट ऑन लाइन जमा करा सकते है।

जो वैष्णव प्रभु श्रीनाथजी के दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक भेंट भेजना चाहते है उनके लिए भेंट/मनोरथ कराना सुविधा जनक हो गया है।

cSadks }kjk ;g lqfo/kk fu'kqYd çnku dh xbZ gSA

नाथद्वारा मंदिर मण्डल शीघ्र ही कॉटेज बुकिंग एवं मनोरथ/भेंट मंदिर मण्डल की साईट के माध्यम से प्रारम्भ करने वाला है। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

THE LIFE OF SHRI MAHAPRABHU VALLABHACHARYA (c. 1479-1531)

-SHYAM DAS

SHRI NATHJI

Shri Mahaprabhuji then told Saddu Pande and the other Braja residents, "Shri Nathji is my all and everything. Remain attached to His seva and be ever ready to react to any complication. Most of all, keep Shri Nathji happy."

Then with his own hands, Shri Vallabhacharya prepared an offering of cooked grains. Until that day, Shri Nathji had only taken milk and curds. After Shri Vallabhacharya cooked Shri Nathji His first meal, the Blessed Lord started to grab food from the Braja Vasis's lunch boxes as they went out to herd their cows.

In the year 1499 during the second day of the bright half of the month of Chaitra, Shri Nathji appeared in Purnamall's dream and told him, "Come to Braja and build a large temple for Me."

He gathered his wealth and left his town of Ambalya and travelled to the Govarhdan Hill where Shri Mahaprabhuji told him, "Yes quickly build the temple.

Shri Mahaprabhuji asked the Govardhan Hill if He would mind if a temple was constructed upon the sacred stones. The Govardhan Hill replied, "Shri Nathji always resides in My heart. I will not be troubled. With pleasure, construct the temple."

When a design was brought for Shri Nathji's temple, Shri Mahaprabhu Vallabhacharya noticed the temple towers and told Hiramani, the designer to make another design without any towers. When the second design also included two towers, Shri Mahaprabhuji again told Hiramani to make a third design without any temple towers. When the third design came, it also had temple towers. Shri Mahaprabhuji told Damodardas, "It must be Shri Nathji's wish to have a temple with towers on it. Shri Nathji will stay in this temple for a while, but when conflict with the Mughals arises, Shri Nathji will move west to Rajasthan."

It was Shri Nathji's wish that His temple along with its towers be built and seen by all. While Shri Vallabhacharya preferred to live in isolation, Shri Nathji was the uplifter of not only divine souls, but of all souls. For the time being Shri Nathji played with his local bhaktas and waited twenty years for His temple to be finally completed. Then Shri Mahaprabhuji returned to Braja and established Shri Nathji in His new temple in the year 1519 on the third day of the bright half of the month of Vaishaka.

Shri Vallabhacharya loved living in Shri Krishna's land of Braja. Mahaprabhuji's followers called him, "The One who adores Braja." Shri Krishna's lilas, the focus of Shri Vallabhacharya's teachings could easily be felt in the sacred forests of Vrindavan and Shri Vallabhacharya revelled there in Shri Krishna's constant divine presence.

After Shri Nathji began to reside in His new temple, Shri Vallabhacharya blessed Purnamall, "Ask anything you desire of me."

Purnamall replied, "I would like to offer Shri Nathji some very fine sandalwood paste with my own hands."

"Happily make your offering."

Then Shri Mahaprabhuji adorned Shri Nathji with clothes and ornaments. On that day, the joy experienced there was ineffable. There was a huge festival. Afterwards, Shri Mahaprabhuji made his disciple Krishnadas, the temple manager and Kumbhandas became the temple singer. Shri Mahaprabhuji told them what foods should be offered to Shri Nathji daily and Saddu Pande made sure that the necessary ingredients were delivered to the temple.

On the day before Shri Mahaprabhuji was going to leave, Shri Nathji told him, "I want a cow."

"I will arrange for one." replied Mahaprabhuji.

Shri Vallabhacharya then told Saddu Pande, "Shri Nathji wants a cow. Sell this golden ring of mine and purchase a cow for Shri Nathji with the money."

Saddu Pande replied, "I have so many cows and buffaloes. They are all yours. Just tell me how many cows you want."

"If you give your cows to Shri Nathji then I have not truly given Him any. So sell my ring and purchase a cow for Shri Nathji!" said Mahaprabhuji.

Saddu Pande purchased a cow and brought her before Shri Nathji. He was very pleased. When all the Braja Vasis heard that Shri Nathji loves cows, one by one they all started to present Shri Nathji with cows. Someone gave Shri Nathji four cows and someone else gave Him eight. Many people gifted Shri Nathji cows and His herd grew into thousands. Shri Mahaprabhuji started to call Shri Nathji "Gopal". The bhakta poet Chittasvami sings of Shri Nathji and His cows.

In front of Him there are cows.
In back of Him there are cows.
Here there are cows
There there are cows.
Govinda loves to live among His cows.
He runs with His cows.
He is content with His cows.
He anoints His body
With the dust that is raised by those cows.
When the cows cover Braja
One forgets the eternal realm of Vaikuntha.

(To be Continued................)

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग के वैष्णव वृन्द को महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत एवं पुष्टिमार्गीय सेवा–पद्धति से परिचित कराने के साथ ही सेव्य प्रभु श्रीनाथजी जो श्रीकृष्ण के साक्षात् बालस्वरुप है, के प्रति स्नेह, सेवा एवं समर्पण भाव की अभिवृद्धि के लिए मन्दिर मण्डल विगत नौ वर्षों से **"पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका"** का निरन्तर प्रकाशन करता आ रहा है। वैष्णवों से आग्रह है कि पुष्टिमार्ग–पत्रिका के सदस्य अवश्य बनें और पुष्टिभाव प्रसारार्थ अन्य लोगों को भी अवश्य सदस्य बनावें। इस हेतु कृपया सदस्यता फार्म भर कर शीघ्र भिजावें।

पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका

प्रकाशक :– मुख्य निष्पादन अधिकारी नाथद्वारा मन्दिर मण्डल नाथद्वारा, पिन कोड– 313301
फोन : 02953–232482, फेक्स : 02953–232482, E-mail <shrinathdwar@bsnl.in>

ICICI Bank A/C No. 004501014021 बड़ौदा बैंक A/C No. 10300100000318

www.shreenathjee.com www. nathdwara. in

सदस्यता शुल्क	वार्षिक	पांच वर्षिय	आजीवन
भारत में	Rs. 60	Rs. 300	Rs. 800
विदेशों में	US$ 12	US$ 60	US$ 160

मुख्य निष्पादन अधिकारी
मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा, पिन– 313301

मैं/मैसर्स पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका की वार्षिक/पांच वर्षिय/आजीवन सदस्यता माह — — — — — — — —वर्ष — — — — — — — — — — — से लेना चाहता/चाहती हूं। इस हेतु राशि — — — — — — — — — — — — — — — — — का एम. ओ./एम. टी./डी. डी. नं. (नाथद्वारा में देय) संलग्न कर प्रेषित है। (कृपया एम. ओ./एम. टी./डी. डी./या ICICI /BOB बैंक खाते में जमा कराई राशि संग "पुष्टिमार्ग पत्रिका हेतु" का उल्लेख कर स्लिप भिजावें)।
(डी.डी., बैंक चैक आदि मुख्य निष्पादन अधिकारी, मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा के नाम बनवावें।)

आवेदक के हस्ताक्षर

आवेदक का नाम— —

पता —

जिला — — — — — — — — राज्य— — — — — — — पिन कोड— — — — — —

फोन — — — — — — — — ई–मेल— — — — — — — — — —

पत्र, आलेख एवं सदस्यता भिजाने हेतु पता–

संपादक :–पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका,
(दयाशंकर पालीवाल, पुष्टि प्रसार अधिकारी, 09829755702)
लोधाघाटी, नाथद्वारा पिन–313301, जिला– राजसमन्द, (राज.)

Shrinathji Temple Board, Nathdwara has been publishing "Pushti Marg" Quarterly Magazine for last nine years to propagate and expand the, philosophical Doctrine of Shudhadwet and system of Pushti Marg sect propounded by Maha prabhu Shrimad Vallabhacharyaji.

All the devoted Vaishnavas are beseeched to be the members of and serve the Pushti Marg by making others to do the same.

MEMBER SHIP FORM

PUSTIMARG QUARTERLY MAGAZINE

Publisher :- Chief Executive Officer, Temple Board, Nathdwara-Pin-313301

Phone : 02953-232482, Fax-02953-232482, E-mail <shrinathdwar@bsnl.in>

ICICI Bank A/C No. 004501014021 Bank of Baroda A/C No. 10300100000318

www.shreenathjee.com www. nathdwara. in

Member ship Fee	Annual	Five Years	Life time
India	Rs. 60	Rs. 300	Rs. 800
Abroad	US$ 12	US$ 60	US$ 160

Chief Executive Officer

Temple Board Nathdwara-313301

I/Messers want to be the member of Pushti Marg Quarterly Magazine for one/Five Years/Life time from the month................year. For this M.O./M.T./D.D. (Payable at Nathdwara) No. .... is enclosed here with. (please endorse the referance "For Pushtimarg Patrika" while sending M.O./M.T./D.D./ or ICICI/BOB Bank slip.)

(D.D./Bank Order Should be on the name of C.E.O. Temple Board. Nathdwara)

Signature of the Applicant

Name of the Applicant..

Adress...

....

District..............................State......................Pin.............

Phone...............................E-mail.......................................

Adress for Sending letters, Articals and Member ship:-

EDITOR :- Pushti Marg Quarterly Magazine
(D. S. Paliwal, Pusti Extension Officer, 09829755702)
Lodha Ghati, NATHDWARA, Dist. Rajsamand, Rajasthan. Pin-313301